कृष्णचन्द्र की कल्पना-शक्ति बहुत प्रबल है। कल्पना के बल पर जहाँ वे आकाश से तारे तोड़ लाते हैं और घास की एक पत्ती को फूल से अधिक सुन्दर बना देते हैं वहाँ इसकी सहायता से वह मनुष्य की उन कोमल भावनाओं और जीवन के उन गूढ़ सत्यों को बड़े सुन्दर और सहज ढंग से व्यक्त कर देते हैं जो मध्यम श्रेणी के कलाकारों की पहुंच से बाहर रहते हैं। कृष्णचन्द्र ने अपनी कल्पना से अधिकतर सौंदर्य-सृजन का काम लिया है। उनकी कहानियों में हर वस्तु ऐसे रूप में हमारे सामने आती है जिसमें हमने उसे पहले कभी नहीं देखा। उनकी कल्पना जिस चीज़ को छूती है उसे सजीव तो कर ही देती है परन्तु साथ ही उस पर एक ऐसा निखार ला देती है, उसमें ऐसा भावुकतापूर्ण अर्थ उत्पन्न कर देती है कि वह चीज़ हमारी अपनी भावनाओं का एक अंग बन जाती है और हमारे मस्तिष्क में अपने अनोखे रूप में सदा के लिये जम जाती है। उनकी कहानियों में रात के अंतिम पहर में तारे आकाश पर ज्वारियों की कौड़ियों की भांति बिखरे पड़े रहते हैं, और फूलों से लदी डालियाँ शर्मीली युवतियों की भांति झुकी पड़ती हैं। उपमाओं की नवीनता और उनकी चौंका देने वाली सुन्दरता कृष्णचन्द्र की कल्पना का एक साधारण चमत्कार है।

कल्पना के बाद जो दूसरी चीज़ उनकी कहानियों में दिखाई देती है वह है सौंदर्य-भाव। कृष्णचन्द्र का सौंदर्य-भाव किसी उच्चकोटि के कवि के सौंदर्य-भाव से लेशमात्र भी कम नहीं है। हर कहानी सुन्दर रंग-बिरंगे दृश्यों, रोचक घटनाओं, सरस भावनाओं और अनूठी उपमाओं का जड़ाऊ चन्दन हार प्रतीत होती है। उनकी कहानियों में सैंकड़ों प्रकार की वनस्पतियों और फूलों का वर्णन है। यह वर्णन इतना सजीव और वास्तविक है कि उसे पढ़कर ऐसा लगने लगता है मानो हम स्वयं उन फूलों, झरनों और पहाड़ों को देख रहे हों और उनकी उपस्थिति अनुभव कर रहे हों। इसके अतिरिक्त उनके यहाँ अनेकों रंगों के विभिन्न चित्र हैं। अनेकों नीले चश्मों में बहते हुए

सफ़ेद झाग, चिनती की सफ़ेद सफ़ेद गर्दन में फड़कती हुई नन्हीं सी नीली नस, हरी-भरी घास पर बिखरे हुए ओस के सफ़ेद मोती और बर्फ से ढकी पर्वतमाला के बीच में आँख की तरह चमकती हुई नीली झील--जितने आकर्षक, प्यारे रंग कृष्णचन्द्र के चित्रों में चमकते हैं उतने शायद ही कहीं और मिलें।

कृष्णचन्द्र की शैली भी अनूठी है। उनकी शैली में वैसा ही प्रवाह है जैसी उनकी कल्पना में उड़ान है। वाक्यों की कड़ियाँ ऐसे ढलती चली जाती हैं जैसे पहाड़ी चश्मे की ठुमकती हुई लहरें, अथवा जैसे सावन में उमड़ती हुई सुरमई घटाएँ एक दूसरे में समाती चली जाएं। उर्दू में इतना रंगीन और संगीतमय गद्य कृष्णचन्द्र से पहले किसी ने नहीं लिखा। कितने ही शब्द ऐसे हैं जिनको कृष्णचन्द्र ने प्रयोग में लाकर उर्दू और हिन्दी दोनों की शब्दावली को समुन्नत किया है।

कृष्णचन्द्र ने अपनी कहानियों में जहाँ सौंदर्य-सृजन किया है वहाँ मानव की सुन्दरतम भावना—प्रेम—को भी कल्पना-शक्ति के सहारे से आरूपित किया है। कृष्णचन्द्र की सब कहानियों का आधार प्रेम है—प्रेम अपने निस्सीम अर्थों में। युवती के प्रेम से लेकर देश-प्रेम और कर्तव्य-प्रेम तक। उनकी दृष्टि में प्रेम एक दूषित चीज़ नहीं है। प्रेम वह प्राकृतिक आकर्षण है जो मानव-मानव के बीच चुम्बक शक्ति का काम करता है। यह वह शक्ति है जो दो परमाणुओं को एक दूसरे से जोड़े रखती है, जो एक सुसंगठित समाज बनाने के लिए मानव की मूल प्रेरणा है। यही कारण है कि कृष्णचन्द्र नारी प्रेम को दूषित नहीं समझते और उसका निःसंकोच वर्णन करने से नहीं घबराते। वे नारी को माया का रूप या पाप का मूल नहीं मानते। वे नारी के शरीर को प्रकृति की सुन्दरतम कृति मानते हैं और उसके सुन्दर, स्वस्थ वर्णन से अपनी कहानियों को सजीव बनाते हैं। कृष्णचन्द्र ने अपनी कहानी "कोर्दी" में प्रेम की एक नई परिभाषा दी है जो मानव प्रेम से जा मिलती है। कृष्णचन्द्र स्वाद और समानता की भाँति प्रेम को भी

मानवता की प्रगति और समृद्धि के नये युग की एक आधार-शिला मानते हैं।

ये हैं कृष्णचन्द्र की कला की कुछ विशेषताएँ। कृष्णचन्द्र और उनके साहित्य पर पूर्णरूप से अभी नहीं लिखा जा सकता क्योंकि वे साहित्य-सृजन कर रहे हैं और उनकी कृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि जहाँ वे कल थे वहाँ आज नहीं हैं और जहाँ आज हैं वहाँ वे कल अवश्य नहीं रहेंगे।

१२. ५. १९५१

रेवतीशरण शर्मा

विषय-सूची

: १ :

फांसी के तख्ते पर

जीवन की अन्तिम घड़ियां क्यों बुरी मालूम होती हैं ? शायद इसलिये कि केवल जीवन में ही आनन्द है, सौन्दर्य है.........। मुझे फ़िरोज़ डाकू की अन्तिम घड़ियां याद आती हैं। उन दिनों मैं कालेज में पढ़ता था। गर्मियों की छुट्टियों में एक मित्र के घर रामगढ़ जा रहा था। तीसरे दर्जे के डिब्बे खचाखच भरे हुए थे। बड़ी मुश्किल से मुझे खड़ा होने की जगह मिली। लम्बी यात्रा थी, कई घंटे इसी तरह दो पैरों पर बीत गये। मेरे पास की बैंच पर दो छोटी छोटी लड़कियां बैठी थीं। और उनके साथ उनका भाई बैठा था, जो मुश्किल से ८ साल का था। इनसे ज़रा हट कर इनकी मां बैठी थी। उससे कुछ दूरी पर दो लड़के बैठे थे। ये कुछ साफ़-सुथरे कपड़े पहने थे और सिर पर मखमल की टोपियां थीं। इनके साथ इनकी मां बैठी थी। वह अधेड़ उम्र की ललाइन थी। इसने एक मैले रंग की रेशमी धोती पहनी हुई थी। इसका गोल चेहरा गम्भीर और उदास सा दिखता था। दोनों लड़के सिमट कर अलग बैठे थे। और कभी-कभी उन दो छोटी छोटी लड़कियों की मां को देख लेते। तब उनके चेहरों पर दुख, भय और क्रोध की रेखायें खिंच जातीं। वे अपना चेहरा दूसरी ओर फिरा लेते और अपनी मां का आंचल पकड़ लेते। छोटी छोटी लड़कियों की मां का चेहरा उतरा हुआ था। बार बार उसकी आंखों में आंसू उतर आते। वह उन्हें काले रंग के खद्दर के दुपट्टे से पोंछ लेती और फिर खिड़की से बाहर देखने लगती। इसका लड़का अपनी छोटी बहनों को

खट्टे कचालू और गंडेरियां स्टेशन से खरीद कर खिलाता था और ललाइन के लड़के उसे घूर कर देखते और फिर अपनी मां से किसी चीज़ की मांग करते। तब ललाइन धीरे से झुक कर सीट के नीचे से एक टोकरी का ढकना अलग कर के सेब या सन्तरे या केले निकाल कर अपने लड़कों को देती और वे ज़रा अकड़ते हुए उन दो लड़कियों के भाई की ओर देखते और मजे से फल खाने में और उसे देख देख कर खाने में मस्त हो जाते।

अभी रामगढ़ बहुत दूर था। मैं खड़ा खड़ा थक गया था। इसलिये मैंने अपने पास की बैंच पर बैठी हुई लड़की से पहचान बढ़ाई। उसे एक-दो स्टेशनों पर खाने की चीज़ें खरीद कर दीं। बड़ी प्यारी छोटी सी लड़की थी वह। बहुत जल्दी मेरी गोद में आगई। और मैं आराम से उसकी सीट पर बैठ गया।

उसने मेरी नाक से खेलते हुए कहा "तुम किधर जा रहे हो?"

मैंने कहा "मैं रामगढ़ जा रहा हूं।"

लड़की ने अपनी मां की ओर मुड़कर कहा "अम्मां यह रामगढ़ जा रहा है।"

लड़की की मां ने मुझे घूर कर देखा। पास बैठी हुई ललाइन और उसके दोनों लड़कों ने मुझे घूर कर देखा। और फिर किसी ने मुझ से पहचान बढ़ाना ठीक न समझा। केवल मेरी गोद में बैठी हुई लड़की ही मुझे अचम्भे की आंखों से देख रही थी। वह खुश थी। मैं उसका साथी था। हम दोनों रामगढ़ जा रहे थे।

मैंने उस से पूछा "तुम्हारे बाप का नाम क्या है?"

वह बोली—"फ़िरोज़!"

मैंने पूछा—"तुम्हारे बाप रामगढ़ में हैं?"

वह बोली—"हां, बाप जेल में हैं।"

मैंने फिर पूछा—"जेल में?" इस की बात समझ में नहीं आती थी। अब दो चार और लोग भी हमारी बात-चीत सुनने लगे थे।

"हां, रामगढ़ जेल में; उनको फांसी हो गई।" यह बात लड़की ने बड़ी शान्ति से गन्डेरी चूसते हुए कही।

"जेल में ? फांसी ?"

अचानक सारे डिब्बे में सन्नाटा छागया। मैंने लड़की की मां की ओर देखा। लेकिन उसने अपना चेहरा काले दुपट्टे में छिपा लिया था और वह सिसकियां ले रही थी। इस डिब्बे की चुप्पी में सिसकियों की गूंज फैलती जा रही थी। ललाइन ने अपने दोनों बच्चों को अपनी छाती से चिमटा लिया। सब लोग डरे हुए से होगये थे। मानो इस चलती गाड़ी में किसी ने फांसी का तख्ता उनके सामने खड़ा कर दिया था। और वे अपनी गरदन उसी रस्सी में देख रहे थे।

"अम्मा, अब्बा को फाँसी हो गई ना ?" लड़की ने बड़े चाव से अपनी मां से पूछा। मां ने तुरन्त उसे मेरी गोद से छीन लिया और ज़ोर से एक तमाचा दिया। फिर उसे अपने काले दुपट्टे में छिपा लिया। लड़की बहुत देर तक इस काले दुपट्टे में रोती रही। ललाइन और उसके बेटे कुछ और दूर हट गये। फर्श पर दो किसान बैठे थे। वे भी राम राम करते हुए उठ खड़े हुए और दूर डिब्बे के दूसरे किनारे पर जा खड़े हुए। इस औरत के, उसकी दो लड़कियों के और उसके लड़के के चारों ओर गाड़ी के यात्रियों ने एक अदृश्य सी चारदीवारी खड़ी कर दी थी, और फिर धीरे धीरे सब अपनी बातों में लग गये थे। उस चारदीवारी के अन्दर फ़िरोज़ की औरत व उसके बच्चे अकेले रह गये थे। गाड़ी चल रही थी।

× × ×

उस रात रामगढ़ से दस मील दूर मेरे मित्र ने एक दावत दी थी। चाँदनी रात थी। चाँद आधे से भी कम था। इसलिये चाँदनी में कालिमा और कालिमा में चाँदनी घुली हुई थी। ऐसी रात मन में

विचित्र भाव भर देती हैं ! जीवन एक रहस्य भरी राह पर चलने को मचलता है । उस समय अपने गहरे मित्रों के चेहरे भी अपरिचित से मालूम होते हैं । इस दावत में आये लोगों की वह महफिल भी विचित्र थी । औरतें ऐसी थीं जो इस देश की मालूम नहीं होती थीं । उनकी हंसी भी कुछ अजीब थी । न जाने क्यों उदासी का एक हल्का सा कोहरा मुझे सारे वातावरण में छाया सा मालूम होता था ।

मेरे मित्र ने पूछा—"तुम चुप क्यों हो ?"

"थका हुआ हूं शायद ।"

"इस लड़की की सूरत तुम्हें पसंद नहीं क्या ?"

"मुझे नींद आरही है ।"

मैं शायद उसी मसनद से सहारा लगाये सोगया । इतना याद है कि सोते समय ओठों पर शराब का थोड़ा मीठा, वकवका सा स्वाद था । लड़की नाच रही थी । घुंघरुओं की छनछन में उसकी आवाज़ पिघल पिघल कर कह रही थीः

"फिर मुझे वायदा तेरा याद आया"

मेरे मित्र ने मुझे झंझोड़ कर जगाया । मोटर भागती जारही थी । शायद नाच-गाने की महफिल उठ चुकी थी और हम वापस रामगढ़ जारहे थे । आसमान पर उजलापन आने लगा था । बहुत से तारों की चमक मन्द पड़ गई थी । लेकिन दो-एक तारों की चमक अभी निखर रही थी । अचानक एक तारा बहुत चमकदार, सुन्दर, नज़र आने लगा । दूर कहीं मुर्गा बोला । घड़ियाल ने पांच बजाये ।

मेरे मित्र ने कहा "मुझे क्या मालूम था इतने थके-मांदे रामगढ़ पहुँचोगे । मैंने तो यह औरत तुम्हारे लिये बुलाई थी और तुम सोते रहे ।"

मैंने जंभाई लेकर कहा "भई, माफ़ करना, मेरे पास पैसे बिल्कुल नहीं थे, कम्बख्त कभी नहीं हुए, यहां मैं आया । अब तुम्हीं बताओ..."

"थर्ड में ? लाहौलवला, भई! रेस अन्धाधुन्ध न खेला करो"

"कौन पाजी रेस खेलता है, वह तो यह समझो कि......अच्छा, तो यह बताओ कि अब हम कहां जा रहे हैं ?"

"जेलखाने में!"

"जेलखाने में ?"

"हां—तुम्हें एक अजीब तमाशा दिखलायेंगे। कभी फांसी देखी है तुमने ?"

× × × ×

टन !

घड़ियाल की अन्तिम गूंज मेरी नसों में धीमे २ बहते खून के बहाव में रम गई। उसने मेरे खून के कण-कण को चौंका दिया, टन टन टन। मेरे खून का कण-कण इसकी पुकार से गूंजने लगा। उसकी गति बढ़ती गई और मुझे अपना गला घुटता हुआ मालूम होने लगा। मैंने कुछ कहना चाहा। लेकिन खून खुद बोल रहा था। उसने मुझे बोलने न दिया। मैं धीमे धीमे अपनी गरदन सहलाने लगा।

"शोफर, तुम्हें मालूम है फाँसी किस समय दी जायगी ?"।

"साढ़े पाँच बजे हजूर।"

"गाड़ी तेज़ चलाओ"

साढ़े पांच बजने में कुछ मिनट शेष थे, जब कि हम जेलखाने के फाटक के अन्दर आचुके थे। हम कार को घुमा कर उस ओर लेगये जहां फाँसी का तख्ता था। यहां जेल के नौकर, डाक्टर और कुछ अफ़सर मौजूद थे। एक छोटे से मैदान में फांसी खड़ी थी। दो लम्बे-लम्बे काले खंभे एक अन्धे कूएं के दोनों ओर लगे थे और इस अन्धे कूएँ के ऊपर लकड़ी का एक तख्ता बिछा था। इस पर भी काला रंग किया हुआ था। दोनों खंबों के बीच दो लोहे के तार

थे। इनका रंग भी काला था, इन दोनों में डेढ़ दो फुट की दूरी थी। ये दोनों तार एक दूसरे के समानान्तर दोनों खंबों के बीचों बीच चले जाते थे। मैदान के चारों ओर ऊँची दीवारें थीं। उनके ऊपर काँच के तेज टुकड़े गड़े थे। और उन पर से पहाड़ियों की चोटियां धुंधली धुँधली दिखाई देती थीं। आकाश पर अब बादल छागये थे।

हम भी डाक्टर के पास जाकर खड़े होगये। वजीर साहब के लड़के को देखकर दो-एक अफ़सरों ने हमें सलाम किया। चेहरे धुंधले धुँधले नज़र आते थे। पास वाली दीवार की छाया एक काली ओढ़नी की तरह तमाशाइयों के मुख पर फैली हुई थी। सब चुप थे। कुछ लोग सिग्रेट पी रहे थे। सिग्रेट का धूंआ और गरम-गरम सांस का धूँआ हवा में बल खाता हुआ नज़र आता था।

मैंने आकाश में चमकते तारे को ढूँढा, जैसे बच्चा सपने में डर जाने पर अपनी मां की छाती ढूँढता है। लेकिन तारा बादलों में छिप चुका था। अब तो हल्की-हल्की बरसात भी शुरु हो गई थी। काली काली दो-चार छतरियां खुल गईं। लेकिन बरसात बिल्कुल मामूली सी थी, जैसे हल्की-हल्की ओस गिर रही हो। सितारा कहीं नज़र न आया।

निराश होकर मैंने अपने मित्र से कहा "चलो चलें।"

वह बोला 'बड़े कायर हो, यह दृश्य तुम्हें उम्र भर कहीं देखना नहीं मिलेगा।"

कहीं लोहे का एक फाटक खुला। फिर, सफेद उजले कपड़े पहने हुए एक मझले क़द का आदमी फांसी की ओर चलता दिखाई दिया। इसका सिर घुटा हुआ था, मुँह पर छिदरी सी दाढ़ी थी। वह बिल्कुल हमारे पास से गुजरा। इसके हाथ पीछे बंधे हुए थे। हमारे पास वह एक घण्टा के लिए रुका और अपने पहरेदारों से फांसी के काले खम्यों की ओर इशारा करके बोला—

"वह आगई मेरी जान लेने वाली।"

इसकी मुस्कराहट कैसी मरी सी थी। इसकी आवाज में ऐसी कंपकपी थी जैसी उस जिन्दा खाल में होती है जिसे छुरी की तेज धार क़तल करने के समय छूए; इसकी चाल में ऐसी उखड़ी उखड़ी सी झवक थी, जैसे वह अपनी टांगों से नहीं लकड़ी की टांगों से चलता हो। फिर भी वह बहादुर आदमी था, दिलेर आदमी था और बिना किसी सहारे के फांसी के तख्ते पर चढ़ गया और ईश्वर का नाम लेने लगा। उसका स्वर साफ़, गम्भीर और ऊँचा था।

वह किस शक्ति की पुकार कर रहा था?

मैंने अपने मित्र से पूछा "जल्लाद कहां है?"

उसी समय एक आदमी सफेद कोट-पतलून और काले बूट पहने हुए आगे बढ़ा और फाँसी की ओर चलता गया। उसके सिर पर सफ़ेद पगड़ी थी। उसका क़द छः फुट से भी ऊँचा ही था। वह दायें हाथ के खंबे के पास खड़ा होगया। और उसने अपना हाथ लोहे की उस फिरकी पर रख दिया जिस पर रेशमी डोर बन्धी थी। इसके दूसरे हाथ में सफेद कपड़े का एक गिलाफ़ था।

मेरे मित्र ने कहा "पुराने दिन गये। आजकल तो जल्लाद भी बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। पिछले दिनों किसी कातिल को मृत्युदण्ड से माफ़ी दे कर सरकारी जल्लाद बना दिया जाता था। उसे इसी शर्त पर माफी दी जाती थी।

मैंने पूछा—और अब?"

"अब बात दूसरी है। अब तो कानून यह नहीं मानता कि केवल जल्लाद बनाने के लिये किसी का मृत्युदण्ड माफ़ किया जाय। मामूली तौर पर लोग जल्लाद के पेशे को......मेरा मतलब है अच्छा नहीं समझते।"

"वह क्यों?" हम फाँसी की सजा देना बुरा नहीं समझते, पर फांसी देना बुरा समझते हैं, ऐसा क्यों?"

"जल्लाद के पेशे के लिये हमें आदमी नहीं मिलते। वेतन भी, ग्रेड भी और सब सहूलियतें भी हम देते हैं, फिर भी......जल्लाद बनने के लिये कोई तैयार नहीं होता। वैसे अब तो जल्लाद का काम भी इतना आसान होगया है कि कुछ मिनटों की बात है। फ़िरोज़ की फांसी के लिये भी कोई जल्लाद नहीं मिलता था। बहुत कोशिशों के बाद यह आदमी माना। यह इसी जेल में कम्पोन्डर है, दो-एक बार खुद रिश्वत के अपराध में कैद भुगत चुका है। रोगियों को पीटने में यह बड़ा कुशल है। और घावों की चीरफाड़ में तो इसकी बराबरी का दूसरा कम्पोन्डर नहीं मिलेगा।

सहसा फ़िरोज़ ने पूछा "मेरे तार का कोई जवाब आया ?"

डाक्टर ने सिर हिलाकर कहा "मुझे दुःख है, तुम्हारे तार का कोई जवाब नहीं आया फ़िरोज़ !"

दया की अन्तिम प्रार्थना भी ठुकरा दी गई थी।

"तुम अपने बीबी-बच्चों से मिल सकते हो।"

लोहे का दरवाज़ा फिर खुला। दो औरतें अन्दर आईं। दोनों के साथ बच्चे थे। दो छोटी लड़कियां और एक लड़का काला दुपट्टा ओढ़े औरत के साथ थे; दूसरी के साथ दुपल्ली टोपियां पहने दो लड़के थे।

दायें खम्बे पर काले दुपट्टे वाली औरत खड़ी हो गई; बायें पर वह ललाइन और उसके लड़के हो गये।

मैंने पूछा "यह क्या तमाशा है ?"

मेरे मित्र ने उत्तर दिया—"यह ल : इन क़तल हुए बनिये की पत्नी है और ये लड़के उसी के हैं।"

फ़िरोज़ ने हंस कर कहा "छोटे शाह जी, अपने बाप के क़ातिल की फांसी देखने आये हो ?"

मैंने मित्र से कहा "यह अमानुषिकता है, पशुता की सीमा है। इन लोगों को यहां नहीं आने देना चाहिये था।"

मेरा मित्र बोला "पहले तो इस रियासत में ही नहीं, सारी

दुनिया में खुले मैदान फांसी दी जाती थी, जिस से सब को शिक्षा मिले।"

फ़िरोज़ ने तलवार की धार के समान तेज़ आवाज़ में कहा "छोटे शाह जी का कलेजा अब ठंडा होगा।"

दाईं ओर उसकी औरत बच्चों को लिये खड़ी थी। फ़िरोज़ ने उन की ओर नहीं देखा। उसकी औरत उसे देखती रही, और फ़िरोज़ ललाइन और छोटे शाह की ओर देखता रहा।

अचानक छोटी लड़की ने हाथ फैलाये और कहा " अब्बा!"

अब्बा!!

अब्बा!!!

फ़िरोज़ ने एक क्षण के लिये उत्तर दिशा के आसमान पर नज़र फैंकी लेकिन चमकता सितारा डूब चुका था। चारों ओर बादल छाये हुए थे और हल्की-हल्की फुहार पड़ रही थी।

मैंने अपने मित्र से कहा "यह अमानुषिक अत्याचार है। बच्चों को यहां आने की आज्ञा नहीं होनी चाहिये।"

लड़की फिर चिल्लाई, अब्बा......अब्बा......अब्बा!!!

फ़िरोज़ ने धीमे से जल्लाद से कहा:

"मुझे जल्दी से गिलाफ़ उढ़ा दो, मैं अपने बच्चों की सूरत नहीं देखना चाहता।"

मेरे मित्र ने जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट से कुछ कहा। उसने आज्ञा दी कि अब दोनों औरतों और बच्चों को वहां से दूर हटा दिया जाय।

लोहे का फाटक एक बार फिर खुला। ललाइन और उसके बेटे बाहर चले गये। फ़िरोज़ की बीबी एक बार रुकी, मुड़ी और चीख़ मार कर अपने पति की ओर बढ़ना चाहती थी कि पहरेदारों ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया और उसे लोहे के फाटक के बाहर धकेल कर कहीं जेलखाने के दूसरी ओर ले गये।

मैंने घड़ी देखी; अभी साढ़े पांच बजने में चार मिनट शेष थे।

डाक्टर ने पूछा "तुम कुछ कहना चाहते हो ?"

फ़िरोज़ के मुंह पर गिलाफ़ था, उसके अन्दर से आवाज़ आई, जैसे वह किसी अंधेरे कुएं में से बोल रहा हो :

"दुआ करो, मेरे लिये दुआ करो, सब लोग मेरे लिये दुआ करो।"

जल्लाद ने रेशमी डोरी का फन्दा उसके गले में डाल दिया और फन्दे की गांठ को उसके गले में फिट कर दिया। यह डोरी न्याय की रस्सी थी।

फ़िरोज़ जोर-जोर से और तेजी से अपने ईश्वर को याद करने लगा।

वह किस शक्ति को बुला रहा था ?

एक मिनट गुजरा।

दो मिनट गुजरे।

तीसरा मिनट गुजर गया।

चौथा मिनट गुजरा—टन जेलखाने के घड़ियाल ने बजाये। उसकी गूंज आकाश में कांपने लगी।

डाक्टर ने सफेद रूमाल हिलाया। दायें खम्बे की फिरकी हिली। फांसी का तख्ता बीच में से अलहदा हो गया और ठीक उसी समय फ़िरोज़ हमारी आंखों के सामने से गुम हो गया। वह अब उन दोनों तख्तों के नीचे अन्धेरे कूएं में उसी रेशमी डोरी से लटका हुआ प्राण छोड़ रहा था।

केवल कुछ क्षणों के लिये लाश तड़पी; जैसे बिजली का तार शरीर से छू गया हो। वह तड़प, कपकपी, बेचैनी और छटपटाहट ऐसी थी जैसे लाखों टन पानी का तूफान अचानक जहाज से टकरा जाय; जैसे बहता हुआ लावा किसी ज्वालामुखी से फट पड़े और आसमान में आग ही आग बरसा दे, जैसे खून की हर बूंद में और दिमाग की हर नस में बारूद का पलीता भक से उड़ जाय। नहीं, इस तड़प की उपमा कहीं भी नहीं मिलेगी। जब देह से आत्मा को जुदा किया जाता है तब जो होता है वह कभी नहीं होता। वह तड़प, वह हरकत

बिजली की टेढ़ी लकीर की तरह मेरी आत्मा को चीरती हुई निकल गई। मैंने अपनी आंखों से अपने आप को मरते देखा, अपने धर्म को मिट्टी में मिलते देखा, अपनी सभ्यता को, मनुष्यता को फूस की तरह जलते देखा। वह सभ्यता, वह मनुष्यता, जिसने खून का बदला खून से लेना चाहा है, कभी पनप नहीं सकती, कभी उठ नहीं सकती, कभी जिन्दा नहीं रह सकती।

फ़िरोज़ की सूरत याद नहीं रही, लेकिन याद के हर कोने में फांसी का एक तख्ता देखता हूँ, जिस पर एक सफेद कपड़ों में ढकी सूरत देखता हूँ। उस का चेहरा गिलाफ़ के अन्दर है और उसकी बांहें पीछे बंधी हुई हैं।

जब भी अकेला होता हूँ यह चित्र मेरे सामने आ जाता है। और एक चुप सा ताना बनकर मुझ से पूछता है "मुझे जानते हो, मैं इन्सान हूँ, भले-बुरे का पुतला, आदि-अन्त पुरुष। तुम ने मुझे एक रेशमी डोरी से अन्धे कूएं में लटका रखा है। क्या मुझे कभी इससे मुक्ति नहीं मिलेगी?"

: २ :

पाल

"पाल !"

"यस डार्लिंग !"

"क्या मतलब है तुम्हारा ? मैं तुम्हारी डार्लिंग नहीं हूँ।"

"तुम हो, मैंने जब कह दिया, बस। क्या तुम्हें यक़ीन नहीं आता ?"

"मैं यह पहले भी सुन चुकी हूं।"

"मैं यह पहले भी कह चुका हूं, कई बार पेरिस में।"

"बड़े सूअर हो तुम।"

"नहीं, मैं सूअर नहीं, मैं आर्यन हूं, तुम भी आर्यन हो; हम दोनों आर्य वंश की सन्तान हैं। मैं फ्रान्सीसी हूं, तुम अंग्रेज़ हो। यह हिन्दुस्तान है और हम दोनों आर्य जाति के वंशज प्रवासी बनकर इस जङ्गल में, इस रेगिस्तान में, इस समुद्र में अकेले हैं। जैसे कोई अकेला टापू चारों ओर पानी से घिरा हो। बताओ, हम क्यों न प्रेम करें डौरोथी ......? तुम्हारा डौरोथी नाम कुछ अजीब सा है। मुझे पसन्द नहीं है तुम्हारा नाम। तुम्हारा नाम होना चाहिये था 'लज़िली', 'रोज़', 'बायना'; हां, बस बायना ठीक है। प्यारा नाम है, शराबी नाम है। फ्रांस की अंगूरी बेलों की मादकता है इसमें। वह मस्ती, वह बहार, वह नज़ाकत है इसमें......बायना...... ।"

"बड़ी अजीब बातें करते हो तुम। बड़ी प्यारी बातें..." "तुम्हें पसंद हैं ना ये बातें, सभी औरतें मुझसे यही कहती हैं।" "सभी औरतें?......तो क्या तुम—हटो मुझे जाने दो। मैं तुम्हारे साथ खाना नहीं खाऊंगी।"

"नहीं, बैठो, अंग्रेज जाति भी सचमुच बहुत विचित्र है, प्रेम के नाम से ही घबराती है। प्रेम फ्रांसीसी सभ्यता की जान है, अब अगर तुम्हारी जगह फ्रांसीसी महिला होती तो जानती हो क्या कहती? अच्छा जाने दो, बैठो, यह हिन्दुस्तान है और हम दोनों अकेले हैं, और आज की रात हमारी है।"

"आज की रात? क्या कहते हो? तुम मुझे घर पर पहुंचा के आओगे न? पापा इन्तजार कर रहे होंगे।"

"छिः—छिः—पापा का नाम न लो, आज की रात हमारी है। यह चीनी रैस्तोराँ है। चीनी भोजन हिन्दुस्तान में और हिन्दुस्तानी भोजन चीन में। मैं जब चुंगकिंग में था तो एक हिन्दुस्तानी रैस्तोराँ में खाना खाने जाया करता था। क्या नाम था उसका—'इंडिया क्रैफे'... इंडिया क्रैफे—। हाय! फ्रान्सीसी क्रैफे याद आते हैं। हर रोज, बार बार, हर क्षण याद आते हैं। यह भी कोई क्रैफे है? न वह साज-सजावट, और न ही वैसी चुलबुली बातें। अपनी प्यारी मीठी भाषा को सुनने को तरसता हूं। माफ़ करना, तुम्हारी अंग्रेजी तो इस तरह बोली जाती है जिस तरह पथरीली सड़क पर रोलर चल रहा हो।"

"शट-अप।"

"सच कहता हूं, और सच को हमेशा शट-अप कहा जाता है। डौरोथी! मुझे तुमसे प्रेम है, लेकिन आज हम दोनों अकेले हैं। बयरा! यह खाना यहां नीचे रखदो। नहीं, इस मेज़ पर न रखो, खाना बाद में खायेंगे, थोड़ी देर बाद। प्रेम इन्तजार नहीं कर सकता, एक क्षण

के लिये भी नहीं। घबराती क्यों हो, यह बयरा इतनी अंग्रेजी नहीं समझता।"

"मान लो यह समझता है तो ?"

"तो भी क्या चिन्ता है ? हर रोज यह मेज़ पर इसी तरह की बातें सुनता है, शायद...... ।"

"तुम तो निरे गुंडे हो। मुझे अफसोस है मैं तुम्हारे साथ यहां रैस्तोरां में चली आई।"

"तुम यह बात दिल से नहीं कह रही हो। यह झूठ है, धोखा है, आत्म-वंचना है। मैं उसे खूब पहचानता हूं। सुनो डौरोथी ! मैं तुम्हें वायना कहूँगा। तुम्हें कोई आपत्ति है ? तुम्हारी आंखें कह रही हैं कि तुम्हें कोई आपत्ति नहीं। सुनो वायना ! तुम बहुत सुन्दर हो। इससे पहले भी तुम्हें कई अंग्रेज पुरुषों ने यह बताया होगा। किन्तु आज एक फ्रांसीसी के मुख से सुन लो। तुम्हारा सौन्दर्य बिल्कुल नया है। इसमें कंवारपन की ताजगी है। मुझे तुम्हारी आंखे बहुत पसंद हैं। ये स्वच्छ, मनमोहनी पुतलियों की गहराइयां और यह मादक शरबती रंग; जैसे जैतून के तेल में शहद मिला हो। और ये बाल, मरुस्थल की रेत की तरह लहरदार, अहा-हा--कैसी अच्छी खुशबू आ रही है इनमें से . ... ।"

"हटो, मुझे न छूओ।"

"कैसी अच्छी गंध आ रही है इनमें से—अच्छी, प्यारी, हल्की, ननर्कीन। जैसे समुद्री हवाओं की ताज़गी और ठंडक इन में रची हुई है। आह—ए अंग्रेज़ औरत ! तूने कभी किसी फ्रांसीसी से प्रेम किया है ? नहीं। तो, तूने प्रेम की महानता नहीं देखी। मुझसे प्रेम कर।"

"सचमुच बड़े बातून हो, शायद इसीलिये तुम मुझे थोड़े पसन्द हो।"

"हां, अब आई सीधे रास्ते पर। हर औरत पहले भटक जाती है

फिर रास्ते पर आती है। कम से कम मेरा अनुभव यही कहता है।"

"तुम्हारा अनुभव ?—उफ़ कितने बेशर्म हो तुम !"

"सच्ची बात कहता हूँ। वायना, तुम मुझे पसन्द करती हो, मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ, और हम दोनों अकेले हैं यहां हिन्दुस्तान में। आज युद्ध है, मौत का बिगुल बज रहा है, मुमकिन है मैं कल मरजाऊँ, तुम पूना से बदल कर सिकन्दराबाद चली जाओ, या मुंगेर, या कोई ऐसी ही जगह; भाग्य ने आज हमें मिलाया है, आज के बिछुड़े जाने कब मिल सकेंगे ? यह कोई जादू नहीं है, भाग्य का खेल है। लाखों-करोड़ों तूफ़ानों के बीच दो परमाणु टकरा गये, मैं और तुम—आओ इस मिलन को पूर्ण करलें। मैं पूना होटल में रहता हूँ। मेरे पास एक कमरा है; जिसके चारों ओर सुनसान शान्ति है। जिन्दगी सो रही है। खिड़की में गुलाब की बेलें हैं, दो बड़े बड़े फूल दो पवित्र आंसुओं की तरह तुम्हारे बालों में जगमगाते नजर आयेंगे —आह डार्लिंग !"

"मुझे सख्त भूख लग रही है।"

"तो आओ खाना खायें। संसारी बातों की चर्चा तुम्हें पसन्द है—अंग्रेज़ महिला जो ठहरीं। फ्रान्सीसी हमेशा प्रेम की धुन लगाता है, अंग्रेज खाने की। माफ़ करना डार्लिंग ! यह स्वभाव तुम्हारे साम्राज्य की नींव है, इस में हिन्दुस्तान भी शामिल है। कहो इस देश के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

"मैंने देखा ही नहीं इसे अभी तक, मगर इतना अवश्य जानती हूँ कि......कि इस में बदबू बहुत है।"

"बदबू ? शायद तुम ठीक कहती हो, यह देश बदबू से भरा हुआ है। और हम तुम दोनों अकेले हैं; दो पवित्र, साफ़ सफेद आर्यन वंश की सन्तान। आओ, भूल जायें, एक दूसरे में लीन हो जायें—

"पुच...पुच..."

"कोई देख लेगा, कोई सुन लेगा।"

के लिये भी नहीं। घबराती क्यों हो, यह बयरा इतनी अंग्रेजी नहीं समझता।"

"मान लो यह समझता है तो?"

"तो भी क्या चिन्ता है? हर रोज यह मेज़ पर इसी तरह की बातें सुनता है, शायद......।"

"तुम तो निरे गुंडे हो। मुझे अफसोस है मैं तुम्हारे साथ यहां रैस्तोरां में चली आई।"

"तुम यह बात दिल से नहीं कह रही हो। यह झूठ है, धोखा है, आत्म-वंचना है। मैं उसे खूब पहचानता हूं। सुनो डौरोथी! मैं तुम्हें वायना कहूँगा। तुम्हें कोई आपत्ति है? तुम्हारी आंखें कह रही हैं कि तुम्हें कोई आपत्ति नहीं। सुनो वायना! तुम बहुत सुन्दर हो। इससे पहले भी तुम्हें कई अंग्रेज पुरुषों ने यह बताया होगा। किन्तु आज एक फ्रांसीसी के मुख से सुन लो। तुम्हारा सौन्दर्य बिल्कुल नया है। इसमें कंवारपन की ताजगी है। मुझे तुम्हारी आंखे बहुत पसंद हैं। ये स्वच्छ, मनमोहनी पुतलियों की गहराइयां और यह मादक शरबती रंग; जैसे जैतून के तेल में शहद मिला हो। और ये बाल, मरुस्थल की रेत की तरह लहरदार, अहा-हा-कैसी अच्छी खुशबू आ रही है इनमें से . ...।"

"हटो, मुझे न छूओ।"

"कैसी अच्छी गंध आ रही है इनमें से—अच्छी, प्यारी, हल्की, नमकीन। जैसे समुद्री हवाओं की ताज़गी और ठंडक इन में रची हुई है। आह—ऐ अंग्रेज़ औरत! तूने कभी किसी फ्रांसीसी से प्रेम किया है? नहीं। तो, तूने प्रेम की महानता नहीं देखी। मुझसे प्रेम कर।"

"सचमुच बड़े चालू हो, शायद इसीलिये तुम मुझे थोड़े पसन्द हो।"

"हां, अब आई सीधे रास्ते पर। हर औरत पहले भटक जाती है

फिर रास्ते पर आती है। कम से कम मेरा अनुभव यही कहता है।"

"तुम्हारा अनुभव ?—उफ़ कितने बेशर्म हो तुम!"

"सच्ची बात कहता हूँ। वायना, तुम मुझे पसन्द करती हो, मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ, और हम दोनों अकेले हैं यहां हिन्दुस्तान में। आज युद्ध है, मौत का बिगुल बज रहा है, मुमकिन है मैं कल मरजाऊँ, तुम पूना से बदल कर सिकन्दराबाद चली जाओ, या मुंगेर, या कोई ऐसी ही जगह; भाग्य ने आज हमें मिलाया है, आज के बिछुड़े जाने कब मिल सकेंगे ? यह कोई जादू नहीं है, भाग्य का खेल है। लाखों-करोड़ों तूफ़ानों के बीच दो परमाणु टकरा गये, मैं और तुम—आओ इस मिलन को पूर्ण करलें। मैं पूना होटल में रहता हूँ। मेरे पास एक कमरा है जिसके चारों ओर सुनसान शान्ति है। जिन्दगी सो रही है। खिड़की में गुलाब की बेलें हैं, दो बड़े बड़े फूल दो पवित्र आंसुओं की तरह तुम्हारे बालों में जगमगाते नजर आयेंगे—आह डार्लिंग !"

"मुझे सख्त भूख लग रही है।"

"तो आओ खाना खायें। संसारी बातों की चर्चा तुम्हें पसन्द है—अंग्रेज़ महिला जो ठहरीं। फ्रान्सीसी हमेशा प्रेम की धुन लगाता है अंग्रेज खाने की। माफ़ करना डार्लिंग ! यह स्वभाव तुम्हारे साम्राज्य की नींव है, इस में हिन्दुस्तान भी शामिल है। कहो इस देश के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

"मैंने देखा ही नहीं इसे अभी तक, मगर इतना अवश्य जानती हूँ कि......कि इस में बदबू बहुत है।"

"बदबू ? शायद तुम ठीक कहती हो, यह देश बदबू से भरा हुआ है। और हम तुम दोनों अकेले हैं; दो पवित्र, साफ़ सफेद आर्यन वंश की सन्तान। आओ, भूल जायें, एक दूसरे में लीन हो जायें—

"पुच...पुच..."

"कोई देख लेगा, कोई सुन लेगा।"

"पुच...पुच..."

"...रोटी..."

"गैट-आउट बयरा..."

"पाल"

"हां प्यारे"

"इन से मिलो—यह अख्तर हैं, हिन्दुस्तान के बहुत बड़े शायर; यह जावेद हैं हिन्दुस्तान के बहुत बड़े एक्टर; यह व्यास हैं हिन्दुस्तान के बहुत बड़े कवि; यह अनन्त हैं, हिन्दुस्तान के बहुत बड़े शिकारी।"

"और इस कमरे में लड़की एक भी नहीं? तुम लोग हिन्दुस्तान के बड़े लोग औरत के बिना जीवन कैसे बिता सकते हो?"

"हम में से कोई व्यक्ति भी औरत के बिना जिन्दगी के दिन नहीं काट सकता। हम लोग बीवी-बच्चों वाले हैं, मां-बहनों वाले हैं, प्रेम भी करते हैं, वेश्यायें भी रखते हैं।"

"मगर, फिर भी ऐसा मालूम होता है—माफ करना—मुझे ऐसा मालूम होता है, जैसे हर हिन्दुस्तानी ने अपनी औरत को स्वप्न-लोक की चार-दिवारी में क़ैद कर रखा है। मुझे घुटन-सी मालूम होती है यहां—एक अजीब बेकली। मुझे हर ओर परदे और दीवारें नज़र आती हैं। जी चाहता है—अच्छा! क्यों बताऊँ क्या जी चाहता है? सुनकर क्या करोगे? मैं परदेशी हूं, तुम हिन्दुस्तानी हो; मैं गोरा हूँ तुम काले हो; मुझ से घृणा करते होगे अपने दिल में; हर योरोपियन से तुम्हें नफ़रत होगी; मेरी बातों पर तुम्हें कैसे विश्वास होगा?"

"नहीं, ऐसा नहीं है पाल! हमें किसी मनुष्य से घृणा नहीं है। हम तो ऐसी व्यवस्था से घृणा करते हैं जो हमारे और तुम्हारे बीच घृणा का बीज बो रही है।"

"किताबी बातें न कहो, जिन्दगी की भाषा में बात करो। माफ़ करना—यह कमरा, ये लोग, यह फर्नीचर, क्या तुम्हारे नैतिक गिरावट और मानसिक दुर्बलता के दर्पण नहीं हैं? क्या इस तरह रहते हैं सभ्य मनुष्य? यह भद्दे फूल पत्तों वाली दरी, यह बड़ा शीशा, यह लोहे की सलाखों वाली खिड़की, ये सोफ़े जो अब न यूरुपी हैं न एशियाई; यह कौन सी सभ्यता है? किस संस्कृति की छाया है इन में? ज़रा बताओ हम तुम इस कमरे में बैठे हैं, इस कमरे की कौन सी विशेषता है, कौन-सा खिचाव है इस में?"

"छिः छिः संभल कर बात करो, होश में आओ पाल! यह कमरा अख्तर की प्रेमिका का है।"

"अख्तर की प्रेमिका का? हाय ग़रीबी! माफ़ करना शायर, तुम शायर हो, तुम्हारा दिल शायर का होगा, लेकिन इस कमरे की आत्मा इतनी ग़रीब क्यों है? ये सूनी दीवारें, ये नंगे कांच, ये बेडौल सोफ़े······"

"किराये पर उठा लाया हूँ।"

"प्रेम किराये से नहीं खरीदा जाता। यह प्रेम नहीं पशुता है। जानते हो, अगर यह कमरा मेरी प्रेमिका का होता तो मैं क्या करता? मैं इस कमरे की हर दीवार को चमेली के फूलों से ढांप देता; चमेली के नाज़ुक फूल, जैसे फ्रान्स की कुमारी.........यास्मीन.........तुम्हारे देश में यास्मीन इतनी बहुतायत से होता है, फिर भी ये दीवारें नंगी हैं, यह दर्पण नंगा है, यहां पर कोई दीवान नहीं, कोई गलीचा नहीं, बरामदे में फूलों की बेलें नहीं, दरवाज़ों पर चमेली के परदे क्यों नहीं? ये लोहे की सलाखें यहाँ क्या कर रही हैं? यह तुम्हारी प्रेमिकाका कमरा है या जेलखाना? प्यारे अख्तर! शायर! बताओ, तुम किस सभ्यता के मानने वाले हो? तुम क्या थे, क्या हो गये? किधर जा रहे हो? कुछ समझ में नहीं आता। बस, यह जानता हूँ तुम अपनी

ग़रीबी, अपनी गुलामी, अपनी मुसीबतों के स्वयं जिम्मेदार हो। माफ़ करना, मैं साम्राज्य का पक्षपाती नहीं, मैं डेमोक्रेसी का सिपाही हूं। क्या तुम मुझ में किसी तरह की परायेपन की झलक देखते हो?

"नहीं"

"तो बस, जो मैं कहता हूँ उसे ठीक समझो। हा-हा-हा! चाय पिलाओगे?"

"जरूर.........पर, एक बात कहूँ पाल! तुम जब बात करते हो तो तुम्हारा निचला होंट बड़े विचित्र ढंग से आगे को फैल जाता है—मारिस शॉंलिया की तरह"। "हर फ्रान्सीसी मेरी तरह मोहक ढंग से इसी मोहक तरीके से बात करता है। यह हमारी जातीय विशेषता है। चार्ल्स बोयां को फिल्मों में काम करते देखा होगा। आह! चार्ल्स बोयां फ्रान्सीसी प्रणय का सच्चा प्रतिनिधि है। अंग्रेज़ जब प्रेम करता है तो कहता है "मैं तुम से प्रेम करता हूं, तुम कितनी सुन्दर हो।" यह भाषा प्रेमी की नहीं है बाजारू भाषा है। फ्रान्सीसी प्रेम करता है तो फूलों की भाषा में अपने दिल की बात कहता है, यास्मीन—यास्मीन ....अख्तर! तुम कमरे को चमेली के फूलों की इन्द्रधनु को मात करने वाली फुलवारी बना दो, ताकि जब तुम्हारी प्रेमिका इठलाती हुई इस कमरे में आये तो तुम आंखों की भाषा में, और फूलों की महक से नर्म सांसों में प्रेम उगला सको।

मैं चार्ल्स बोयाँ की वह बात कभी नहीं भूलता जो उसने अपनी प्रेमिका की तारीफ़ में कही थी। एक मामूली सा वाक्य कहा था लेकिन इससे सुन्दर वाक्य प्रेम की भाषा में आज तक नहीं कहा गया। उसने कहा था "तुम मेरी प्रेमिका नहीं हो तुम पेरिस हो।" इस वाक्य पर मैं सौ जान से कुर्बान हूं.........। अख्तर! तुम अपनी प्रेमिका को क्या कहते हो भला?"

"मैं?—मैं तो कुछ भी नहीं कहता, बस, चुपचाप बैठा उसे देखता रहता हूं।"

"यह एशिया की भाषा है, लाचारी की भाषा है। गरीब, गुलाम और मुर्दा लोगों की भाषा है। प्यारे! प्रेम करना सीखो, तब तुम स्वयं आजाद हो जाओगे। सच कहता हूं, यह चाय बुरी नहीं, लेकिन प्याला टूटा हुआ है। तुम लोगों का दिल बुरा नहीं, लेकिन यह खोल यह चोला, यह शरीर बदलने की जरूरत है। रंग की चर्चा नहीं कर रहा, फ्रान्सीसी जाति सफेद रंग की जातियों में पहली जाति है जो हब्शी के रंग से प्यार करती है। हम रंग भेद में विश्वास नहीं करते मैं फ्रान्सीसी हूं, डेमाक्रेसी का सच्चा सिपाही—अच्छा! तो यह बताओ, तुम्हें युरोपियन औरतें पसन्द हैं? क्यों शायर! तुम से तो पूछना बेकार है, अपनी प्रेमिका......।"

"नहीं—, अब ऐसी भी क्या बात है। सफेद रंग की औरतें पसन्द तो हैं।"

"और तुम्हें जावेद?"

"अच्छी होती हैं, लेकिन जरा मैली—देह से बदबू आती है, वैसे बड़ी स्वस्थ होती हैं।" "और तुम शिकारी? अच्छा यह बताओ, फिल्म-अभिनेत्रियों में तुम्हें कौनसी पसन्द हैं?"

"इंग्रेड बर्मन"

"स्केन्डेनेवियन टाइप है। आदमी तड़प को इतना क्यों पसन्द करता है? शायद यह बिजली की शक्ति इन्सान के अन्दर भी काम कर रही है। शायद यह प्रेम भी इसके सिवा और कुछ नहीं। बिजली की लहरें...उनका टकरा जाना प्रेम......खूब...ठीक तो है। मुझे देखो, मैं सफेद रंग की औरत को बिल्कुल पसन्द नहीं करता और अंग्रेज़ औरत तो इतनी भद्दी लगती है कि बिल्कुल नज़र से उतर चुकी है। मुझे हिन्दुस्तानी औरत से प्यार है, लगन है, बेहद प्रेम है। मैं हर हिन्दुस्तानी औरत से प्रेम करता हूं, हर एक से। मुझे उनका रंग पसन्द है। बाल पसन्द हैं, उनकी चाल पसन्द है,

उनकी हंसी पसन्द है, उनकी सादगी पसन्द है, उनकी ममता, उनकी लज्जा, उनकी समझ, उनकी सहन-शीलता। यह यूरोपीयन औरत तो खुदा की कसम बड़ी बदसूरत है। पाउडर और रंग में लिपी-पुती, टांगें नंगी, नीली-नीली नसें और चितले दाग—ऊफ़ कितनी घिनौनी सूरत है। कहां वह मोहक साड़ियों का बहाव, जैसे समुद की लहरें किनारे की रेत पर...वह कुमकुम का टीका...शायद मैं भी तुम्हारी तरह अपनी ज़िद को पसन्द करता हूं। मुझे हिन्दुस्तान में सिर्फ़ आन्ध्र की औरतें पसन्द हैं, मैं किसी हिन्दुस्तानी औरत से शादी करूंगा।"

"झूठ बोलते हो पाल ! तुम किसी फ्रान्सीसी कुमारी, किसी गैस्कन लड़की से शादी करोगे और युद्ध के बाद फ्रान्सीसी शराब का व्यापार करोगे, हिन्दुस्तान में भला तुम क्या रहोगे ?"

"यह सच है, मैं फ्रान्स को नहीं छोड़ सकता, लेकिन मैं—मैं हिन्दुस्तान की एक देवी को फ्रान्स लेजाना चाहता हूं। मेरा ख्याल है फ्रान्स उसका स्वागत करेगा। मेरे मां-बाप उसे स्वीकार करेंगे। मैं समझता हूं वह मेरे साथ सुख रह सकेगी। मैं हिन्दुस्तान की आत्मा को समझता हूं, इसलिये हिन्दुस्तानी लड़की से शादी करना चाहता हूं। उसके लिये मैं फ्रान्स में एक छोटा सा मन्दिर बनाऊँगा। यह फ्रान्स और हिन्दुस्तान की शादी होगी।"

"जो डूपले और निपोलियन न कर सका।"

"तुम भूलते हो प्यारे ! मैं वह फ्रान्सीसी नहीं हूं। मैं रूसो और वाल्टेयर का फ्रान्सीसी हूं। मैं साम्राज्यवादी नहीं हूं, मैं डेमोक्रेसी का सिपाही हूं। आओ चलो कहीं चलकर थोड़ी सी शराब पियें और किसी हिन्दुस्तानी लड़की का नाच देखें। मुझे हिन्दुस्तानी बाज़ार बहुत पसन्द हैं और वह लाल-लाल पर्दे भी, जिनके भीतर हिन्दुस्तानी लड़कियां नाचती हैं...छुन-छुन...छुन-छुन...हा हा हा !"

'नान'

"हूँ।"

"रीनेक्लेयर के बारे में तुम्हारी क्या राय है?"

"बहुत अच्छा फ़िल्म डायरेक्टर है, फ्रान्स का सर्वश्रेष्ठ डायरेक्टर, जिसे हालीवुड ने खराब कर दिया। यही होता है जब कोई फ्रान्सीसी अपने देश से बाहर जाता है। वह तबाह हो जाता है। यह जाति इसी तरह तबाह हुई है। तुम्हें मालूम है, मैं रीनेक्लेयर का सहायक रह चुका हूँ।"

"नहीं, मुझे मालूम न था।"

"उसके लिये मैं एक कहानी भी लिख रहा था। फिर लड़ाई शुरू हो गई और सब रह गया।"

"उस कहानी में क्या था?"

"मां और बेटी दोनों का एक ही आदमी से प्रेम है और आदमी उसकी मां का अवैध पिता है, याने इस बेटी का बाप।"

"वाह—वाह, फिर क्या होता है?"

"फिर—मगर, यह बड़ी लम्बी कहानी है। अन्त में यह होता है कि बेटी और बाप पति और पत्नी की तरह रहते हैं। क़ानूनी शादी नहीं हो सकती, मगर इस से क्या होता है; प्रेम में कोई क़ानून नहीं...... बयरा दो लार्ज विस्की लाओ........"

"पाल! तुम आज बहुत खुश नज़र आ रहे हो, क्या बात है?"

"एक बात है; तुम्हें बताना चाहता था, मगर, मैंने सोचा चौथे पैग के बाद बताऊँगा।"

"कहो"

"मैं कल सुबह हिन्दुस्तान से विदा हो रहा हूं, फ्रेंच सीरिया जा रहा हूँ।"

"इस में खुशी की क्या बात है?"

"यही कि मैं फ्रेंच सीरिया जा रहा हूं, हिन्दुस्तान छोड़ रहा हूं। वहाँ से रोम राज्य शुरू होता है। पेरिस दो क़दम पर है, और सच

पूछो तो वह फ्रेंच सीरिया है, अपना देश है।"

"पाल ! वह तुम्हारा अपना देश किस तरह है ?"

"क्या कहते हो तुम ?"

"ज़रा सोचो,—फ्रेंच सीरिया—तुम्हें इन दो शब्दों का अर्थ मालूम है ? बाहिर से मत पढ़ो इन शब्दों को, इन शब्दों को अन्दर से पढ़ो। पाल ! फ्रेंच सीरिया.........फ्रेंच क्यों ? तुम्हें इस में कोई अजीब बात मालूम होती है। फ्रेंच सीरिया, ब्रिटिश इंडिया, डच बोर्नियो; तुम्हें इन चमकते हुए शब्दों के परदों में कहीं कालिमा की झलक नज़र आती है ?"

"लो व्हिस्की पिओ।"

"पाल ! तुम कल जा रहे हो। मैं बहुत खुश हूँ। तुम एक समझदार फ्रांसीसी हो। तुम योरुप की सभ्यता, उसके धर्म और आचार-विचार के सच्चे दर्पण हो। शराब पिओ दोस्त, तुम कल फ्रेंच-सीरिया जा रहे हो। इतिहास का दौर डेढ़-दो सौ बरस से चला आ रहा है। डेढ़-दो बरस क्या होते हैं; डेढ़ दो दिन, डेढ़ दो क्षण, कुछ भी नहीं दोस्त, फिर अगर कल यह दौर बदल जाय और कोई सिपाही तुम से कहे "मैं काली फ्रांस—हिंदी बर्त्तानिया और हब्शी इटालिया जा रहा हूं, तो तुम्हें खुशी होगी ?"

"बहुत पी गये हो शायद, पीकर तुम्हारी भावनायें क्षीण हो जाती हैं और मन्द बोलने लगती हैं।"

"भावनायें क्षीण नहीं—बदल बोल रही हैं। आज मालूम हुआ तुम कितने झूठे हो, तुम्हारी सभ्यता झूठी है, तुम्हारी खुशी झूठी है, तुम्हारी महानता खोखली है दोस्त, तुम मर चुके हो, क्योंकि तुम ने अपने दिल में अत्याचार, अनाचार और बेवफ़ाई को जगह दी है। ज़ालिम हिन्दुस्तानी !.........पाल ! मुझे गुस्सा मत दिलाओ। इसे उस हिन्दुस्तानी कौम के लिये इंकार कर गयी जिस के लिये तुम फ्रांस में मन्दिर बना रहे थे। वह मन्दिर पहले ही धूल में मिल गया—वह मन्दिर

जिस में रुसो और वाल्टेयर की आत्मा ने जन्म लिया था। मैं जलील हूं लेकिन ज़िन्दा हूं। तुम ऊँचे हो लेकिन मर चुके हो, और मुझे मुर्दों से कोई वास्ता नहीं। जाओ, फ्रेंच सीरिया जाओ, या डच अफ्रीका जाओ। तीसरा विश्व युद्ध तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जिस तरह दिन के बाद रात आती है उसी तरह झूठी सुलह के बाद फिर युद्ध आयगा—क्योंकि पाल तुम अभी तक नफ़रत के क़ब्रिस्तान में सो रहे हो। मुझे रोको नहीं, बोलने दो; आज मेरी बारी है और तुम फ्रेंच सीरिया जा रहे हो और हम दोनों विस्की पी रहे हैं। एक जिन्दा एक मुर्दा। एक ज़लील एक बेरहम। ठहर जाओ पाल! यहां से उठकर कहाँ जा रहे हो? अपने दोस्त का आखरी सलाम तो लेते जाओ। सुनो! मैं अकेला नहीं हूं पाल! मैं चालीस करोड़ हूं..........मैं नफ़रत नहीं हूं, मैं प्यार हूं। मैं नेपोलियन नहीं हूं, अशोक, अकबर व गौतम की सन्तान हूँ। कबीर का नाम सुना है तुम ने? सुनते जाओ पाल। मैं अजन्ता हूं, मैं इलोरा हूँ, ताजमहल हूं, मैं प्रेम और मानवता की मूर्त्ति हूं। तुम आजाद होकर भी प्रेम नहीं कर सकते, मैं गुलाम होकर भी तुम से प्रेम करता हूं। मेरा घर बड़ा है, मेरा दिल बड़ा है, मेरी आत्मा विशाल है..........ठहर जाओ पाल! यह चमेली के फूलों का हार लेते जाओ—, एक गिरे हुए देश की अन्तिम भेंट; सुनो..... सुनो पाल! पाल!! मैं तुम्हें उस तीसरे विश्व युद्ध से बचाना चाहता हूँ। सुनो पाल, मुझे तुम से नफ़रत नहीं है..... .....मुझे तुम से नफ़रत नहीं है..........।"

: ३ :

भूत

वर्षा हो रही थी। पिछले पांच दिन से लगातार मूसलाधार पानी बरस रहा था। बादलों का रंग धवल-धवल था, और ज़मीन का मख़मली—पानी में भीगी हुई हरी मख़मल का सा, जिस पर पैर फिसलते और पानी के बुलबुले बनते व फूटते थे। वहां आसमान से गिरती हुई बूंदों का भयानक शोर था और सड़ी हुई मिट्टी की गन्ध थी। मेंढक पानी के छोटे २ नालों में तैरते थे। एक बहुत बड़ा भूरे रंग का मेंढक ताल में से फुदकता और रेल की पटरी को पार करता हुआ आगे निकल गया। सिगनल वाले की कोठरी के पास एक भैंस चर रही थी। मेंढक इसके पांव तले आगया। दुर्घटना, ईश्वर की लीला, भाग्य— किसी को क्या कहिये, ज़िन्दगी मौत में बदल चुकी थी।

गाड़ी आने में अभी बहुत देर थी। उसने टिकट ख़रीदा, छाता खोला, चने वाले से चने खाये, अख़बार पढ़ा, बूट पर पालिश कराई, सिर खुजाया, उठकर टहला, टहलकर बैठ गया। यह एक छोटा सा देहाती स्टेशन था। बम्बई से १८ मील दूर। ये १८ मील इस समय हज़ारों मील मालूम हो रहे थे। प्लेटफार्म की घड़ी की सूइयां देर से रुकी हुई थीं। शायद वे इन्तज़ार सी गाड़ी का इन्तज़ार कर रही थीं। उसने अंगड़ाई ली, इधर उधर देखा, कहीं कोई सुन्दर स्त्री भी न थी। सिगार कहीं नहीं मिलती थी। [illegible] की तंग खाई नालों पर कीचड़ [illegible]

रहे थे। गीली बैंचों पर दुनियां भर की एक बेहद बदसूरत औरत पान की जुगाली कर रही थी, मूंगफली खा रही थी, जांघें सहला रही थी, चने की खुरक दाल में कांदा-नमक, लाल मिरच और नीबू का रस डाल कर अपनी दांतों की चक्की तले पीस रही थी और बार-बार आंखें झपक कर रेल की चमकती हुई पटरी देखने में मस्त थी.........
गाड़ी......कहीं कोई गाड़ी न थी। रेल की चमकती हुई पटरी दूर आस्मान में खो जाती थी। पानी बरस रहा था, मेंढक टर्रा रहे थे।

अगर वह पांच मिनट पहले आजाता तो बोरीली से आने वाली गाड़ी पर सवार हो सकता था। लेकिन ऐसा न हुआ। अब छः बज चुके थे। उसे दूसरी गाड़ी की, जो पौने सात बजे आयगी, प्रतीक्षा थी। छाता उठाकर उसने एक खंबे से लगा दिया और पास ही एक बैंच पर बैठ गया। इस पर लिखा था: "फर्स्ट-सेकन्ड क्लास की औरतों के लिये।" एक तो उसे प्लेटफार्म पर पहिले, दूसरे दर्जे की औरत दिखाई नहीं दी, फिर यह भी था कि मरदों की बैन्चों पर औरतें और औरतों की बैन्चों पर पुरुष बैठे थे। उसने सोचा उस पुरुष में भी थोड़ी बहुत असभ्यता की झलक थी। लेकिन कम्बख्त स्टेशन मास्टर को अपनी पतलून की सलवट ठीक करने से ही फुरसत नहीं थी। वह प्लेटफार्म का चरित्र कैसे समझ सकता था, छाते की टेढ़ी कमानियों से पानी टपटप करके बह रहा था और फर्श पर लिख रहा था, कभी नागरी के अक्षर, कभी उर्दू के। गीदड़ का मुँह, शेर के अयाल, जिन्ना का चेहरा, चर्चिल की चुरट, मन्दिर की तिकोनी छत—, जो देखते-देखते मस्जिद की गुम्बद में बदल गई और फिर गिरजा की मीनार में पलट गई, और फिर वही एक आलीशान महल का खण्डहर बन गई। यह सब बन रहा था। बूंद-बूंद करके पानी बह रहा था और एक कलम की नोक से अलग अलग भाषाओं, सभ्यताओं, धर्मों और इन्सानों को बनाता चला जा रहा था। अब छाते की मुड़ी हुई मूठ के नीचे बहुत सा पानी जमा होकर एक छोटी

सी झील बन गया था। वह आदि था तो यह मंज़िल है। यहीं सब सभ्यतायें, धर्म और मनुष्य घुल-मिल कर एक हो जाते हैं। पानी भी अजीब चीज़ है। हिन्दू पानी—मुसलिम पानी—और यह छत का पानी!—कम्बख्त गाड़ी भी नहीं आती थी।

मलाड से चर्च-गेट तक जाने में पूरा एक घंटा लगेगा, इस चिन्ता से उसकी कनपटियां दुखने लगीं। उसे एस्प्रो की गोली याद आने लगी। लेकिन मलाड तो एक निकम्मा छोटा सा स्टेशन था। यहां एस्प्रो छोड़ जिंजर की बोतल भी नहीं मिल सकती थी। दरअसल वह मलाड स्टेशन से तुरन्त भाग जाना चाहता था। क्योंकि इसकी सूरत में बरसती हुई बरसात की उदासी समा गई थी, मेंढक टर्रा रहे थे और गन्दे कौवे उसकी तरह बिजली के तारों पर बैठ अपनी काली-काली चोंचों से पंख खुजला रहे थे। और मैले-कुचैले मारवाड़ी धोतियों से जूएं चुनने में मस्त थे। और मैली-लहँगेवाली औरतों ने एक ही तरह के फूल एक ही ढंग से अपनी वेणी में लगा रखे थे, उन्होंने सीधी मांग निकाल कर अपने बालों में नारियल का तेल भर लिया था और कूट के पाउडर की तरह उसे मांग में छिड़क कर चमका लिया था। वह सीधी मांग दूर से रेल की पटरी मालूम हो रही थी। गाड़ी अभी तक लापता थी।

रेल की पटरी और जीवन में क्या भेद है, यह सोचने पर उसने अनुमान निकाला कि भेद यही है कि रेल की पटरी कई स्टेशनों पर ठहरती है, जीवन एक पर ही। यह अगर कई स्टेशनों पर ठहरे तो जीवन [illegible] है। इन्तज़ार दोनों के लिये करना पड़ता है। पर जो मज़ा इन्तज़ार में है वह गाड़ी पर चढ़ने में नहीं। जीवन भर पढ़ने-वालों के लिये [illegible] गाड़ी [illegible] है और गाड़ी के लिये टिकट खरीदना होता है। जो लोग बे-टिकट सफ़र करते हैं वे सामाजिक नियमों के अनुसार [illegible] हैं। गाड़ी हो या जीवन, बे-टिकट सवारी करने वालों [illegible] सूरत में सज़ा मिलती है। सौदा —

तौवा, कैसी बुरी-बुरी बातें सोच रहा था वह ! उसके विचार मर्यादा की सीमा को लांघ रहे थे। अब उसे गृहस्थी का टिकट खरीदना ही पड़ेगा।

उसने प्लेटफार्म की घड़ी की ओर देखा। अभी केवल दस मिनट बीते थे—केवल दस मिनट। और अपनी ओर से वह कई सदियां बिता चुका था। वह छुटपन से जवानी और जवानी से बुढ़ापे में आया, और फिर अपने बचपन के सुहावने सपनों की दुनियां में लौट चला था। किन्तु गाड़ी फिर भी न आई थी। और अभी सिर्फ दस मिनट बीते थे। उसने पालिश वाले छोकरे को आवाज दी। वह छोकरा एक नथने में अंगुली डालकर गुनगुनाता-सा बोला 'साहब! अभी तो तुम्हारा बूट पालिश किया है।'

"कोई बात नहीं, इसे फिर पालिश से अच्छी तरह चमकादे। देख अबकी बार अच्छी तरह पालिश कीजियो, दो आने दूंगा।'

पालिश वाले ने उसके पांव अपनी फटी निकर पर रख लिये। यह निकर कभी खाकी रंग की रही होगी, लेकिन अब जगह-जगह से फट कर बेरंग हो चुकी थी। पालिश वाले की टांगों पर अनगिनत छोटे-छोटे घाव और फुन्सियों के दाग थे। इसके नंगे पांव में बिवाइयां फूट आई थीं। और उसकी नाक से नज़ला सुड़-सुड़ करके बहता था। लेकिन पालिश वाला लड़का भी बड़ा होशियार था। वह अपने बहते हुए नज़ले को एक ही बार सांस खींचकर नाक के अन्दर लेजाता था। थोड़ी देर के बाद नज़ला फिर उसके नथनों से बहना शुरू हो जाता। लगता कि अब गिरा यह बूट पर, लेकिन वाह रे लड़के! एक ही सांस में उसने नज़ले को नाक के अन्दर खींच लिया और ब्रुश को सपाटे से बूट पर घिसने लगा। गाड़ी फिर भी न आई। शायद यह गाड़ी कभी न आयगी। उसने पालिश वाले से कहाः—"बूट के तसमे खोल दो और बूट अलग लेजाकर पालिश करो।" उसने सोचा, चलो; तसमे खोलने में ही कुछ देर समय टलेगा।

हंस-हंस कर उल्लू बना देने वाली और फिर पीछे मुड़कर जाने वालों की ललचाई नजरों से दाम वसूल करने वाली, बहुत भद्र कंवारी, पढ़ी-लिखी, खान्दानी लड़की थी। वही आज चर्च-गेट पर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। पर गाड़ी अभी तक आई न थी।

आज जीत का दिन था। दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त होगया था। दुनिया ने थक कर चैन का सांस लिया था। जर्मनी और जापान हार कर हथियार रख चुके थे और उसकी प्रेमिका ने नीला रेशमी साया पहना था, जिसमें उसका छरहरा नाजुक कोमल शरीर नई ताजा बहारों की तरह नजर आता था। दुनिया में बहार आगई थी और वह मलाड में जूतों पर पालिश करा रहा था।

आज गाड़ी नहीं आयेगी। आज वह जीत की धूम-धाम नहीं मना सकेगा। शांति होने की खुशियों में भाग नहीं ले सकेगा। फोर्ट में घूमती हुई, क़हक़हों से जगमगाती हुई ट्रामों की रोशनी न देख सकेगा। डेमोक्रेसी के सिपाहियों को प्याले पर प्याला चढ़ाते और शांति के तराने गाते न सुन सकेगा। नाच-घर में नीले जम्फर के इर्द-गिर्द चक्कर न कर सकेगा, जुहू तटकी रेशमी रेत पर लिटा कर उसके होंट न चूम सकेगा। बस, आज वह जूते पालिश करायेगा और नाक से बहते हुए नजले को अन्दर से बाहिर और बाहिर से अन्दर जाते हुए देखता रहेगा और उसकी प्रेमिका निराश होकर वापिस चली जायगी और क़हक़हे बुझ जायंगे, मुस्कराहट बुझ जायगी और खुशियों के तराने मौन हो जायेंगे। बस, उसके लिये तो भीगी-भीगी घास पर मेंढ़क टर्राते रहेंगे, लापरवाह भैंसों के पैरों तले कुचले और मसले जाते रहेंगे; बिल्कुल इसी तरह जैसे अब उसका दिल मसला-कुचला जा रहा था, क्योंकि गाड़ी नहीं आई थी—निराशा में डूबते हुए उसने अपनी आंखें बन्द करलीं।

जब उसने आंखें खोलीं तो सबसे पहले उसकी नज़र एक टोकरे पर जो अब उसके पैरों के पास फ़र्श पर था, पड़ी। वह टोकरा अभी-अभी

ही वहां रखा गया था। इस टोकरे में मछलियां थीं; समुद्री मछलियां, मोटी-पतली, उलटी-सीधी, छोटी-बड़ी हर प्रकार की मछलियां थीं। इस टोकरे के पास एक आधा नङ्गा आदमी बैठा था। इसने ताड़ी पी रखी थी। वह इस टोकरे की ओर देख देखकर मुस्करा रहा था। उस का काला मंजा हुआ शरीर बड़ा सुडौल था। दांत मज़बूत और सफेद थे। वह धड़ से ऊपर नङ्गा था, पांव नंगे थे और आधी जांघें भी नङ्गी थीं। केवल कमर पर किसी पुरानी धोती का चिथड़ा लपेट रखा था जो गीला-पतला सा पानी से तर हो गया था। वह कपड़ा क्या, एक आईना था, जिसमें मनुष्यता का चेहरा नज़र आता था। वह मछियारा न था। इसका चेहरा भीलों का सा था। आंखों में जङ्गली पशुता थी। बाहों में एक असीम अत्याचारों से दबकर उभरी हुई नसें, एक लचक और लोच थी। मानों वह किसी सभ्य दुनिया का वासी नहीं, जङ्गल का सुन्दर जानवर था। आज वह मछलियां पकड़ कर लाया था और अब ताड़ी पी कर हँस रहा था।

पास ही इसकी औरत बैठी थी। वह भी आधी नंगी थी। उसकी गोद में एक पतला-दुबला बच्चा था। अपने सुडौल थनों से वह उसे दूध पिलाने की व्यर्थ कोशिश कर रही थी। और साथ ही साथ इस बेकार कोशिश से खीझ कर ऊँची आवाज़ में रोती-पीटती मातम भी मना रही थी। आंखों से आँसू बह रहे थे, नाक बह रही थी, होटों से लार टपक रही थी। वह बिलकुल उस बच्चे की तरह रो रही थी जिससे उसका मन चाहा खिलौना छीना जा रहा हो। उसकी गोद का बीमार बच्चा वमन पर वमन कर रहा था। उसका दम टूट रहा था। गरदन एक तरफ़ झुक गई थी। किन्तु, भील यह सब देख कर भी हँस रहा था। उसकी आंखें लाल थीं और उसने ताड़ी पी रखी थी।

बच्चे ने फिर वमन किया। औरत ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। भील उसे पीटने लगा। औरत ने साग का गट्टा भील के सिर पर दे मारा। लोग हँसने लगे। फिर वह भील खुद भी हँसने लगा। वह

हँसी बड़ी विचित्र थी, पागलों की सी हँसी। माना कि आज जीत का दिन था, जीत के समारोह थे, आज दुनिया को फासिस्टों के पंजे से मुक्ति मिली थी और हिन्दुस्तान का हर होटल खुशियों के तराने गा रहा था, लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि कोई इस तरह बे सोचे-समझे ताड़ी पी कर हँसे।

छोटे बच्चे का सिर एक तरफ़ ढलक गया था। वह अर्ध-नंगी भीलनी बैठी हुई अपनी फटी धोती के आंचल से इसका वमन पोंछ रही थी। एक पुलिस का सिपाही उसे इस तरह गन्दगी फैलाने पर गालियां दे रहा-था। इधर इसकी छाती नंगी थी, बाहें नंगी थीं, उधर बाज़ार में करोड़ों गज़ कपड़े के अंबार लगे थे। इसकी बाहों पर एक भयानक नाग की तस्वीर गुदी हुई थी।

सट्टा बाज़ार में सोने चांदी का भाव गिर रहा था किन्तु उसकी नंगी बाहों में लकड़ी के ही मोटे कड़े पड़े थे, सोने के नहीं, चांदी के नहीं, पीतल या तांबे के भी नहीं, केवल लकड़ी के कड़े थे वे। उसके पांवों पर पायलों की तस्वीर खुदी थी। क्योंकि जब औरत को ज़ेवर न मिले तो वह उसकी तस्वीर देखकर ही क्यों न खुश हो......?

उसका लड़का उसकी गोद में प्राण छोड़ रहा था। और सिपाही उसे गालियां दे रहा था। उसका पति ताड़ी के नशे में चूर उसकी ओर देख-देख कर हंस रहा था। वह नंगा था, उसकी औरत भी नंगी थी, उनके आंसू नंगे थे, उनकी हँसी नंगी थी; क्योंकि भील से उसका बन छिन गया था, उसका देश छिन गया था, उसके तीर कमान छिन गये थे। अब वह अपने घर में बेघर था, बे हथियार था, निकम्मा था। जंगल छिना, लेकिन शहर न मिला। जंगल का वल्कल चीर छिना पर उसकी जगह तन ढापने को रुई का सूत न मिला। शिकार छिना पर रोटी न मिली। तीर कमान छिने, बन्दूक न मिली। जड़ी-बूटी छिनी, दवाई न मिली। वह अकेला—मित्र मददगार सब से अलग था। इस नई दुनियां में उसके लिये कोई जगह नहीं थी। प्लेटफार्म पर मछलियों

का टोकरा लिये बैठा-बैठा वह अपने बच्चे का मरना देख रहा था, किन्तु नहीं जानता था कि क्या करे ? केवल ताड़ी के नशे में अपने को भूलने की कोशिश कर रहा था।

उसका झूलता हुआ सिर और भी झूलने लगा। वह रेल के खँबे का सहारा लिये बैठा था। उसका सिर इतना झुक गया था कि पेट से जा लगा था। उसी समय अचानक एक चीख़ के साथ उसकी औरत ने अपने दोनों हाथों से सिर पीट लिया। कुछ खास बात नहीं हुई थी। वह बार बार वमन करने वाला बच्चा इस दुनिया से कूच कर गया था। उसकी आंखें पथरा गई थीं। और वह मूर्ख औरत अपने स्तन बच्चे के मुर्दा होठों में ठोसने की कोशिश कर रही थी। उसकी ममता के पास अपने दूध भरे स्तनों के सिवा कुछ न था। दवा क्या है, खाना किसे कहते हैं; मक्खन, दूध, ग्लूकोस, विटामीन और हैज़े के इन्जकशन कौनसी बलाएं हैं, कहाँ हैं, कैसे मिल सकती हैं, इसे कुछ मालूम नहीं था। रेशम क्या है, सेन्डल क्या है, आराम क्या है, किताब क्या है, ज्ञान किस बला का नाम है, सभ्यता किसे कहते हैं, होंट कैसे मुस्कराते हैं, आंखें कैसे चमकती हैं, सांस में सुवास कैसे भरती है कुछ भी पता न था। जीत किसे कहते हैं; फ़ासिज्म, डेमोक्रेसी, युद्ध और शान्ति में क्या फर्क है—कुछ भी तो मालूम न था। वह अचानक अपने मुर्दा बच्चे को लेकर खड़ी हो गई। उसकी हैरान फटी-फटी आँखें दुनिया से कुछ कह रही थीं। चमकते हुए बालों वाली औरतों से, जूएँ चुनने वाले धन-कुबेर मारवाड़ियों से, अपनी पतलूनों की सिलवट संभालते स्टेशन मास्टर से वे कुछ पूछ रही थी और जब कहीं भी उसके सवालों का जवाब न मिला तो उसने अपनी निगाहें झुका लीं और निढाल होकर जमीन पर बैठ गई। मानों इसने इस गन्दे देहाती स्टेशन आदमियों को नहीं केवल पत्थर की चट्टानों को ही देखा।

गाड़ी अब दूर से नज़र आ रही थी। उसका जूता दर्पण के

"क्या बात है जानी ? डर गये थे क्या ?"

"हां, मैं सच-मुच डर गया था" उसने डरते-डरते कहा।

"किस से ?"

"अभी-अभी मैंने एक भूत देखा था।"

"भूत ? इस गाड़ी में ?" साथी ने पूछा।

"हां।"

"नान्सेन्स।"

"नहीं, सच कहता हूं। भूत था।"

"किस का भूत था ?" उसने अपनी प्रेमिका के गुच्छेदार बालों से खेलते हुए पूछा।

"तीसरे महायुद्ध का भूत" उसने रुकते-रुकते जवाब दिया।

अंग्रेज़ सिपाही और उसकी साँवली प्रेमिका के चेहरे पीले पड़ गये। डब्बे में सन्नाटा, मौत का सा मौन छा गया। सब चुप थे, मानों कोई बैठा न था। और उसे ऐसा मालूम हुआ मानों डब्बे के किसी कोने में खड़ा हुआ भील अभी तक हंस रहा हो।

: ४ :

अन्धा छत्रपति

यों तो शहर में कई अन्धे भिखारी घूमते रहते थे लेकिन जो मजा हमें अन्धे छत्रपति को छेड़ने में आता था वह किसी और भिखारी को सताने में नहीं मिल सकता था। कहने को तो भगत भी अन्धा था; लेकिन आंखें रखने वालों से भी चालाक। बाज़ारों और गलियों में इतना वे खटके चलता था मानों सारा शहर इसका अपना है। उसकी आंख के पपोटे लाल-लाल और डरावने थे। उसके सामने खड़े होकर तंग करने का साहस नहीं होता था। और फिर उसके पास एक बहुत बड़ा सोटा होता था, जिसे वह घबराहट की हालत में ज़ोर-ज़ोर से घुमाया करता था। अगर कोई लड़का सोटे की लपेट में आ गया तो उसकी चटनी बन जाती थी। इस तरह कई पिट चुके थे और कई पिटने से बाल-बाल बचे थे।

अन्धा भगत जितना भयानक था छत्रपति उतना ही सीधा, सादा, गरीब स्वभाव का था। वह बड़ी आसानी से हमारी चाल में आ जाता था। इसकी आंखों की पुतलियां भी बिल्कुल हमारी तरह थीं और आंखों की सफेदी भी दूध के समान सफेद थी। पपोटों का रंग भी लाल और डरावना नहीं था। उसे आज तक किसी ने बात करते नहीं सुना था। इसके हाथ का सोटा भी केवल अपनी रक्षा के लिये चलता था।

शहर में जितने भिखारी थे सबको चिढ़ाने के लिये हम अलग-

अलग नाम रख देते थे। लम्बा, तड़ंगा, गेरुआ कपड़ा पहने हुए एक बाबा था जो स्वभाव का बड़ा कड़वा था। उसे हम "बाबा करेला" कहा करते थे। वह इसे सुनकर चिढ़ जाता था। 'बाबा करेला', 'बाबा करेला' पुकारते-पुकारते सैंकड़ों बच्चे इसके आसपास एकत्र हो जाते और इससे जी भर गालियां सुनते थे। वह कहा करता—'हरामजादो, मैं क्या करेला हूँ ? तुम्हारे बाप करेले हैं, तुम्हारी मां, तुम्हारी बहनें, तुम सब करेले हो, खुदा तुम्हारा सत्यानाश करे।"

लड़के हंसते, कोलाहल करते और तालियां बजाते थे।

एक लड़का फिर चीख़ कर पुकारता 'ओ...बाबा...करेला।'

दूसरा कहता "गाड़ी लोगे ठेला ?"

तीसरा कहता "पैसा लोगे धेला।"

चौथा कहता "ओ...बाबा...करेला।"

और बाबा करेला सुन-सुनकर दांत पीसता। इसके ओठों पर झाग आ जाती। "हरामजादो ! ठहरो जाते कहां हो ?" यह कहकर वह लकड़ी की खड़ाऊं उतार कर हमारी ओर फेंकता और हम खिल-खिल करते तितर-बितर हो जाते।

एक का नाम साईं भंगा था। यह हमेशा नंगा रहता था। भगत लोग इसे पीर मानते थे। वह केवल गोश्त खाता था, वह भी कच्चा। बच्चे सब की छेड़ ढूंढ ही लेते हैं। एक दिन उसे किसी ने कह दिया साईं भंगा उड़-उड़-उड़।" वह पत्थर लेकर उसके पीछे भागा। अब वह जिधर जाता 'साईं भंगा उड़-उड़-उड़' कहकर लड़के आसमान सिर पर उठा लेते।

चौधरी हरभज भी एक निराला फ़कीर था। उसे अपने नाम से बहुत प्यार था। बस, यह नाम ही उसके दुर्भाग्य का कारण बन गया। नाम था 'हरभज', लड़कों ने गीदड़ नाम से पुकारना शुरू कर दिया। बाज़ार में, गली में, सड़क पर जहां कहीं वह मिल गया लड़कों ने गीदड़-गीदड़, कहकर उसे तंग करना शुरू कर दिया।

एक कहता 'हरभज ।'

दूसरा जवाब देता 'गीदड़ ।'

फिर सब मिलकर कहते "हरभज गीदड़, हरभज गीदड़ ।"

हरभज गालियां देते लड़कों को पीटता और कई बार अपनी छाती कूटने लगता।

एक दिन बाज़ार से गुज़र रहा था । एक दूकान पर कुछ नौजवान ताश खेल रहे थे । एक साथी ने अपने दूसरे साथी से पत्ता फैंकते हुए कहा "माई डीयर ।"

हरभज ने समझा उसे माई डीयर कहकर किसी ने गाली दी है। बस, फिर क्या था, वहीं खड़ा होकर गालियां देने लगा। "तुम माई डीयर, तुम्हारा बाप माई डीयर, मेरा नाम हरभज है, मेरे बाप का नाम रामभज था, वह तहसील में चपड़ासी था, हम बरहमन हैं, शरम नहीं आती तुम्हें ?"

एक नौजवान बोला 'हरभज'

दूसरे ने जवाब दिया 'माई डीयर' ।

अब हरभज जिधर से गुजरता उस पर माई डीयर की आवाजें कसी जातीं । बाद में यह भी एक काम हो गया कि उस के लिये रोज एक नये नाम का आविष्कार किया जाता ।

हां—लेकिन छत्रपति इन सबसे निराला था । वह सदा चुप रहता और धीरे २ रास्ता टटोलते गुज़र जाता । उसे चिड़ाने के लिये हमने अपने सब गुर लगा लिये लेकिन व्यर्थ। आखिर एक दिन जब हम सब उसके चारों ओर घेरा डाले उसे तंग करने के लिये कई तरह के यत्न कर रहे थे, एक अजनबी हमारे रास्ते से गुज़रा । पहले तो वह बहुत देर तमाशा देखता रहा, फिर धीरे से झुक कर उसने एक लड़के के कान में कहा :

"इसके पास जाकर ऊँचे स्वर में कहो "मखनी—हाय मखनी—हाय मखनी ।"

अब खूब तंग किया जायगा। कम्बख्त हमें पिटवाते हैं। ठहरो तो बच्चा जी! अब देखें तुम हमसे बचकर कहां जाते हो—इसी तरह मैं दीवानखाने के एक कोने में पड़ा सिसकियां लेता हुआ सोचता रहा। एक बार मामा खाने का बुलावा देने के लिये भी आई, "चलो, मां जी खाने को बुलाती हैं।" मैंने इन्कार कर दिया—"मुझे भूख नहीं है।" फिर बहुत देर गुज़र गई। मैं प्रतीक्षा करता रहा कि कोई मुझे मनाने के लिये आये। पर कोई न आया। ना बड़ा भाई, ना पिता जी, ना मां जी। आह! इस दुनिया में एक गरीब लड़के को कोई नहीं पूछता। ये लोग कितने पत्थर-दिल हैं। यह विचार आते ही मेरी हिचकियां और भी तेज होगईं। मैंने सोचा कि मैं अगर यहां से इसी समय कहीं दूर भागजाऊं तो फिर ये लोग मेरी खोज करेंगे। बड़े भाई हाथ मलते हुए पछतायेंगे, "मैंने इसे क्यों मारा।" मां कहेगी 'यह सब तेरा ही दोष है, अब तू ही इसे ढूंढकर ला, मैं अपना लाल तुझसे लूंगी।' और बड़ा भाई हैरान होकर मेरी तलाश में मारे मारे फिरेंगे। मगर क्या मैं इनको मिल सकूंगा? हरगिज नहीं। मैं बहुत दूर...दूर...

इतने में दीवानखाने का दरवाजा खुला। पिता जी, बड़े भाई और तीन चार साथी अन्दर आये। बहुत घबराये से मालूम होते थे। मेरी ओर ध्यान भी नहीं दिया। मैं अपने कोने में सिमट कर लेटा रहा। कोई हुक्का पीने लगा, कोई ताश खेलने लगा, कोई अख़बार उठाकर देखने लगा। अचानक अखबार पढ़ने वाले आदमी ने बड़े भाई को सम्बोधन करते हुए कहा "आज मैंने छत्रपति के सम्बन्ध में बड़ी विचित्र बातें सुनीं, सुनोगे?"

सब लोग सुनने को सावधान हो गये। हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ उसने छत्रपति की कहानी सुनानी शुरू की।

"छत्रपति जात का ब्राह्मण है। और [illegible] गांव का रहने वाला

है। यह गांव गुलमर्ग से २५ मील दूर पश्चिम की ओर है। इसके मां-बाप बचपन में ही इसे अनाथ छोड़ कूच कर गये थे। रिश्तेदारों ने उसकी ज़मीन हड़प ली। अब छत्रपति गांव का अनाथ लड़का था। वह हर किसी को अपना चाचा कहता, खेतों में काम करता, और चश्मे से पानी ढोकर अपने रिश्तेदारों के घर पहुंचाया करता था। इस सेवा के बदले उसे रोटी मिल जाती थी और कभी-कभी पहनने के लिए गाढ़े की टोपी भी! कभी इसे कोई काले रंग की कमीज़ सिलवा देता और कभी कोई पाजामा बनवा देता। इसी तरह वह अपने चाचों के बीच पलता रहा और पलते-पलते १८ बरस का हो गया। लोग कहते हैं कि वह अपनी जवानी में बहुत सुन्दर था। स्वभाव का सरल और मेहनती भी था। काम तो वह अब भी सब का कर देता था लेकिन अब उसमें अपनापन समझने की बुद्धि भी आ गई थी। जवानी उभरने के साथ वह गांव की लड़कियों की ओर ताक-झांक भी करने लगा था। गांव के अनाथ को इससे पहले ऐसा साहस नहीं हुआ था। दुर्भाग्य यह था कि गांव की गुलाब की कली के समान सुन्दर दो बहनें भी इससे बहुत कोमल व्यवहार करने लगी थीं। खासकर मखनी जो गांव की लड़कियों में सबसे सुन्दर, प्यारी अलबेली लड़की थी। पहिले जब वह इससे मिलती थी तो इससे बात भी नहीं करती थी और गरदन उठाये हुए, कमर झटका कर जंगल की हिरनी की तरह पास से गुज़र जाती थी। लेकिन अब? आह, अब छत्रपति को लगा कि मखनी की सब भावभंगियां केवल उसके लिए थीं। उसकी कोमल, तरल आँखें, उसके रसीले ओठों की हलकी अजीब सी मुसकान उसे याद आने लगी। अब वह उससे तनकर नहीं रहती थी। कोई भी लड़की अब उससे कड़वे ढंग से पेश नहीं आती थी। लेकिन मखनी की बातों में कुछ और ही रस था। दूज के चांद की पहली झलक, पहले प्यार का अनोखा आनन्द। रसीली आवाज, प्यारे-प्यारे छोटे-छोटे वाक्य, हंसते शरमाते हुए वह जब बात करती तो फूल झड़ते थे। कभी चश्मे के पास, कभी लहलहाते

धान के खेत पर, कभी ऊँची घाटियों में लम्बे-लम्बे दयार के वृक्षों के बीच रेवड़ चराते हुए वह उसे मिल जाती थी तो जंगली जानवरों की तरह पवित्र, भोली लगती थी।

अचानक ही छत्रपति की दुनिया बहुत सुन्दर और मीठी हो गई। आकाश पर मंडराते सफेद बादलों को देखकर उसका दिल किसी अज्ञात सुख से कांपने लगता। जंगल के झरनों की आवाज़ में उसे जीवन के निराले और सुनहरे गीत सुनाई देते। और फिर स्वयं उसके जीवन के तार उस दिव्य स्वर के गीत से झनझना उठते।

लेकिन छत्रपति के चाचों को इसका परिवर्त्तन एक क्षण के लिये भी पसन्द न आया। क्या हुआ अगर वह सुन्दर जवान था। आखिर वह............इनके टुकड़ों पर ही पल कर जवान हुआ था। गांव के अनाथ की ढीठ निगाहें लोगों के दिलों में तेज भाले की तरह चुभने लगीं। क्या उसके पास एक हाथ भर भी जमीन थी? एक गाय, एक भैंस, एक बकरी तक उसके पास नहीं थी। उसे क्या अधिकार था कि वह गांव की सुन्दर लड़कियों से हंसकर बात करे? और शादी? इसके साथ शादी करने से तो यही अच्छा था कि इस मूर्ख लड़की को किसी देवदार के वृक्ष के साथ बांध दिया जाय। शादी करके भी भूखी मरती, वृक्ष से बंध कर भी भूखी मर जाती।

आखिर गांव के बड़े बूढ़ों की पंचायत ने फैसला करके छत्रपति को गांव से बाहिर निकाल दिया।

दो साल बाद जब छत्रपति वापस आया तो गांववालों ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया। सरनो का बाप खुशी से फूला न समाता था। साथ ही छत्रपति को मालूम हुआ कि इस बीच उसकी कई कुड़ियां, शादियां, तय हो गई हैं। बात यह थी कि छत्रपति परदेस में २-३ सौ रुपये कमा लाया था। उसके पास कपड़ों व अन्य सामान से भरे तीन ट्रंक भी थे। एक सुन्दर सितार भी था। इतना सुन्दर सितार आजतक उस गांव के बड़े-बूढ़ों किसी ने न देखा था। सितार में [illegible]

मुलायम तकिये, रेशमी चादरें और एक चमकती हुई रज़ाई थी। ऐसा सुन्दर बिस्तर तो नम्बरदार के घर पर भी नहीं था। गांव के जिन बूढ़े ब्राह्मणों ने उसे गांव से बाहर निकाला था अब वही प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते थे और उसे देख-देख कर कृतकृत्य हुए जाते थे। बड़ी बूढ़ी औरतें एक दूसरे से बातें करती हुई कहती थीं: "सुना है हमारा छत्रपति (हर एक औरत हमेशा 'हमारा छत्रपति' पर बहुत बल देती थी) मेरठ में एक दुकान का मालिक है। वह वहां मोटर और बाइसिकल ठीक करता है। कितना अच्छा लड़का है। भला इसकी उम्र क्या होगी? बस, हमारी निहाली की उम्र का होगा।

इस तरह एक महीना गुजर गया। छत्रपति ने अपना धन दोनों हाथों से लुटाया। अकेला मखनी का बाप २००) कर्ज़ के बहाने हड़प गया। ट्रंकों से भरे कपड़े फूफियों और चाचियों ने हथिया लिये और वह सुन्दर बिस्तर शायद नम्बरदार ने माँग लिया। उसके यहाँ एक शहरी महाजन अचानक आ निकला था। बेचारा छत्रपति मखनी के बाप से मंगनी की मांग करता रहा और मखनी का बाप उसे हर बार टालता रहा और आखिर जब छत्रपति के पास कुछ न रहा तो मखनी के बाप ने उसे कह दिया:

"भाई, अभी तो नहीं।" ब्याह का बहुत काम करना है। और तुम जानते ही हो मैं ग़रीब आदमी हूँ। अगले साल.........

"बहुत अच्छा" कह कर छत्रपति ने सिर झुका लिया।

मखनी का बाप बोला "बात तो अब पक्की हो ही गई है। मुझे तुम हर महीने कुछ न कुछ भेजते रहना। क्योंकि आखिर विवाह करना है। दहेज़ भी होगा और बिरादरी को दावत भी देनी पड़ेगी......

रात को पटवारी के घर रात-जगा था। गाँव की औरतें और मरद पटवारी के घर के आंगन में, दालान में और कमरों में जमा थे। ढोलक

धान के खेत पर, कभी ऊँची घाटियों में लम्बे-लम्बे दयार के वृक्षों के बीच रेवड़ चराते हुए वह उसे मिल जाती थी तो जंगली जानवरों की तरह पवित्र, भोली लगती थी।

अचानक ही छत्रपति की दुनिया बहुत सुन्दर और मीठी हो गई। आकाश पर मंडराते सफेद बादलों को देखकर उसका दिल किसी अज्ञात सुख से कांपने लगता। जंगल के झरनों की आवाज़ में उसे जीवन के निराले और सुनहरे गीत सुनाई देते। और फिर स्वयं उसके जीवन के तार उस दिव्य स्वर के गीत से झनझना उठते।

लेकिन छत्रपति के चाचों को इसका परिवर्त्तन एक क्षण के लिये भी पसन्द न आया। क्या हुआ अगर वह सुन्दर जवान था। आखिर वह............इनके टुकड़ों पर ही पल कर जवान हुआ था। गांव के अनाथ की ढीठ निगाहें लोगों के दिलों में तेज भाले की तरह चुभने लगीं। क्या उसके पास एक हाथ भर भी जमीन थी? एक गाय, एक भैंस, एक बकरी तक उसके पास नहीं थी। उसे क्या अधिकार था कि वह गांव की सुन्दर लड़कियों से हंसकर बात करे? और शादी? इसके साथ शादी करने से तो यही अच्छा था कि इस मूर्ख लड़की को किसी देवदार के वृक्ष के साथ बांध दिया जाय। शादी करके भी भूखी मरती, वृक्ष से बंध कर भी भूखी मर जाती।

आखिर गांव के बड़े बूढ़ों की पंचायत ने फैसला करके छत्रपति को गांव से बाहिर निकाल दिया।

दो साल बाद जब छत्रपति वापस आया तो गांववालों ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया। नसरी का बाप खुशी से फूला न समाता था। मगर जो छत्रपति को मालूम हुआ कि इस बीच उसकी कई फूफियां, भाभियां, पैदा हो गई हैं। बात यह थी कि छत्रपति परदेस से ५-६ सौ रुपये कमा लाया था। इसके पास कपड़ों व अन्य सामान से भरे तीन ट्रंक भी थे। एक सुन्दर बिस्तर भी था। इतना सुन्दर बिस्तर आज तक इस गांव के अड़ोस-पड़ोस किसी ने न देखा था। बिस्तर में गोल-गोल

मुलायम तकिये, रेशमी चादरें और एक चमकती हुई रज़ाई थी। ऐसा सुन्दर बिस्तर तो नम्बरदार के घर पर भी नहीं था। गांव के जिन बूढ़े ब्राह्मणों ने उसे गांव से बाहर निकाला था अब वही प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते थे और उसे देख-देख कर कृतकृत्य हुए जाते थे। बड़ी बूढ़ी औरतें एक दूसरे से बातें करती हुई कहती थीं: "सुना है हमारा छत्रपति (हर एक औरत हमेशा 'हमारा छत्रपति' पर बहुत बल देती थी) मेरठ में एक दुकान का मालिक है। वह वहां मोटर और बाइसिकल ठीक करता है। कितना अच्छा लड़का है। भला इसकी उम्र क्या होगी? बस, हमारी निहाली की उम्र का होगा।

इस तरह एक महीना गुजर गया। छत्रपति ने अपना धन दोनों हाथों से लुटाया। अकेला मखनी का बाप २००) कर्ज़ के बहाने हड़प गया। ट्रंकों से भरे कपड़े फूफियों और चाचियों ने हथिया लिये और वह सुन्दर बिस्तर शायद नम्बरदार ने माँग लिया। उसके यहाँ एक शहरी महाजन अचानक आ निकला था। बेचारा छत्रपति मखनी के बाप से मंगनी की मांग करता रहा और मखनी का बाप उसे हर बार टालता रहा और आखिर जब छत्रपति के पास कुछ न रहा तो मखनी के बाप ने उसे कह दिया:

"भाई, अभी तो नहीं।" ब्याह का बहुत काम करना है। और तुम जानते ही हो मैं ग़रीब आदमी हूँ। अगले साल.........

"बहुत अच्छा" कह कर छत्रपति ने सिर झुका लिया।

मखनी का बाप बोला "बात तो अब पक्की हो ही गई है। मुझे तुम हर महीने कुछ न कुछ भेजते रहना। क्योंकि आखिर विवाह करना है। दहेज़ भी होगा और बिरादरी को दावत भी देनी पड़ेगी......

रात को पटवारी के घर रात-जगा था। गाँव की औरतें और मरद पटवारी के घर के आंगन में, दालान में और कमरों में जमा थे। ढोलक

बज रही थी। रस से भरे गिलास और मीठी रोटियां बट रही थीं। हुक्कों की गड़गड़ाहट, बूढ़ों की खांसी, नौजवानों के क़हक़हे, बच्चों का कोलाहल, सभी कुछ था। इसी चहल-पहल में इधर-उधर घूमते हुए छत्रपति और मखनी पटवारी के घर से बाहर निकल आये और एक हरे खेत के किनारे पत्थर की छोटी सी सिल पर बैठ गये। यहां एक छोटा सा चश्मा था। चश्मे पर शीशम के पेड़ की एक लम्बी टहनी झुकी हुई थी।

छत्रपति ने एक लम्बी सांस लेकर कहा: "मैं कल वापस मेरठ चला जाऊँगा।"

मखनी छत्रपति के पास आगई और कांपती हुई आवाज़ में बोली "वह क्यों?"

"तुम्हारे पिता जी कहते हैं कि हमारी शादी अगले साल होगी। अब उन्होंने मुझ से पक्का वायदा कर लिया है।"

बहुत देर तक दोनों चुप बैठे रहे।

छत्रपति ने मखनी की कमर में हाथ डालते हुए कहा: "मैं बहुत खुश हूं मखनी!"

"एक साल"—मखनी ने लम्बी आह भरी।

"एक साल भी क्या होता है? जल्दी बीत जायगा। इसके बाद............इसके बाद मखनी!"

"इसके बाद!"........मखनी ने बड़ी मिठास से कहा।

वो दोनों चुप हो गये। और बैठे-बैठे भविष्य के सुनहरी सपने देखने लगे। शीशम के कोमल पत्तों की छाया पानी की सतह पर कांप रही थी। आकाश के नीले सरोवर पर चाँद और तारे फूलों की तरह खिले हुए थे। पूरब से हवाओं के झोंके आकर दिलों को गुद-गुदा रहे थे। इनमें गुलमर्ग के जङ्गली फूलों की सुगन्ध भरी हुई थी। खेत के दूसरे किनारे से लड़कियों के गाने की आवाज़ आ रही थी। वे एक ग्राम्य गीत गा रही थीं जिसमें प्रेम की मधुर-मधुर बातें थीं।

सुख की दुनिया में खोये हुये दोनों को अचानक ऊँचे अट्टहास ने जगा दिया। उन्होंने मुड़ कर देखा तो मखनी की कुछ सहेलियां उन के सिर पर खड़ी थीं। वे हंसती-हंसती दोहरी होती जा रहीं थीं।

अरी मखनी बेशरम !!

मखनी बेदे-मजनूँ की टहनी की तरह लचकती हुई उठी और एक छलांग में अपनी सहेलियों में शामिल हो गई। उसने शर्म से अपना मुख छिपा लिया। सहेलियां उसे मुक्कों से 'कूटने' लगीं। फिर ज़रा ठहर कर सब छत्रपति की ओर मुड़ीं और उसे गीतों ही गीतों में प्यारी-प्यारी गालियां सुनाने लगीं। छत्रपति मुस्कराता हुआ सब कुछ सुनता रहा।

अब कहानी थोड़ी ही शेष है। छत्रपति ने वह साल जिस तरह गुजारा वह उसका दिल ही जानता था। हर महीने अपना पेट काट कर जैसे भी होता तीस, पैंतीस रुपये मखनी के बाप को भेज देता था। हर महीने उसे मखनी के बाप के एक-दो पत्र आजाते थे जिनमें उसकी आने वाली शादी की चर्चा होती थी। और रुपयों की मांग भी होती थी। पहले सात महीने तो उसे लगातार खत आते रहे। फिर अचानक खत आने बन्द हो गये। लेकिन छत्रपति निरन्तर रुपये भेजता रहा। अन्त में जब साल समाप्त होने लगा तो उसने वापस घर जाने की तैयारी की। खुशी में फूला वह घर पहुंचा। खतों का जवाब न आना उसके लिये विशेष महत्त्व का नहीं था। उसने सोचा शायद मखनी का बाप शादी की तैयारियों में इतना व्यग्र हो कि खत लिखने का समय न मिलता हो।

और, यह बात थी भी सच! मखनी का बाप शादी की तैयारियों में लगा हुआ था। जल्दी ही मखनी की शादी हो जाने वाली थी। लेकिन छत्रपति से नहीं, गांव के अधेड़ उम्र नम्बरदार से।

इसमें आश्चर्य की बात ही क्या थी ? वह गांव का नम्बरदार था। और गांव में पटवारी के बाद सबसे अमीर था। पटवारी खुद उसकी बात नहीं टालता था। मखनी के बाप को रुपयों की सख्त ज़रूरत थी। वह धान के लिये दो बीघा जमीन और खरीदना चाहता था।

मखनी सुन्दर थी, इसलिये बिक गई। दौलतमन्दों की दुनिया में हर चीज़ बिकती है। किन्तु मौक़े पर बिकती है। जो अधिक मूल्य दे ले जाये। मखनी के बाप ने उसे धान के दो खेतों के मूल्य में बेच डाला। उसने बुरा किया ? नम्बरदार अधेड़ उम्र का था तो इससे क्या, और यह उसकी तीसरी शादी थी तो भी क्या परवाह ? इस धन-प्रधान युग में रुपया ही सबसे कीमती और सुन्दर चीज़ है। इस दृष्टि से मखनी का भाग्य चमक उठा था। इन अर्थों में उसे सचमुच बड़ा 'कीमती' और सुन्दर वर मिला था।

आखिर जैसा देवताओं ने कहा है वैसा ही होना था। भाग्य की रेखा को कौन मिटा सकता है। गरीब छत्रपति ने जब गांव पहुंच कर मखनी की शादी हो जाने का समाचार सुना तो क्या उसके दिल पर आरे चल गए, क्या उसकी आखों से आंसू की बूंदें भी टपकीं ? क्या उसके पत्थर के कलेजे से आह निकली ? हां— इतनी बात जरूर हुई कि उसका चेहरा पीला पड़ गया और उसने यह खबर सुनकर किसी से बात तक नहीं की।

सारा दिन वह......एक पत्थर की चट्टान पर बैठा हुआ सीटी बजाता रहा। कई नौजवान उसे धीरज दिलाने आये, लेकिन रास्ते से ही वापिस मुड़ गए। एक-दो आदमियों ने उसे खाना खाने को भी कहा लेकिन उसने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। शाम हो गई। फिर संध्या की लाली रात के अंधेरे में बदल गई। एक-दो करके आकाश में तारे भी निकल आये और चांद भी। लोगों ने इसे अपने

घर चलने को कहा। लेकिन इसने फिर इन्कार कर दिया।

इसी चट्टान पर बैठे बैठे इसने सारी रात गुजार दी। वह रात कैसे गुजरी—यह कोई नहीं जानता। उसकी असफल-इच्छाओं के प्रेत उसे किस नरक में घसीट कर ले गये—यह किसे मालूम? वह किस नये नरक की आग थी जो उसके सिसकते हुए दिल से उठकर इसके होश-हवास को अपनी लपटों में समेटती हुई उसकी आत्मा को राख कर गई—यह कौन जाने? वह कौनसी क़यामत थी जो बिजली की तरह लपक कर पलभर में उसकी भावनाओं और स्मृतियों को दिल व दिमाग़ की दुनिया को टुकड़े-टुकड़े कर गई? यह क्यों, कैसे, किस तरह हुआ? इस भेद को कोई नहीं जानता। लेकिन यह बिल्कुल सच है कि जब दूसरे दिन सुबह गांववालों ने छत्रपति को इस चट्टान पर बैठा पाया तो उसकी आंखों की तरलता काफूर हो चुकी थी। और उसकी विचार शक्ति सदा के लिये लुप्त हो गई थी।"

इस कहानी का असर मुझ पर कई दिन रहा। और मैं कितने ही दिन अंधे छत्रपति को ढूंढता रहा, जिससे अपने अपराधों की क्षमा मांग सकूं। लेकिन अन्धा छत्रपति मुझे कहीं न मिला। कुछ दिन और गुजर गये और मैंने सुना कि अन्धा छत्रपति मर गया। इसकी लाश शहर से बाहिर दूर एक सड़क के किनारे पाई गई। कहते हैं, इसके घुटने के जख़्म में जहर पैदा हो गया था जिसके कारण वह तड़प-तड़प कर मर गया।

शाम के ढलने से पहले सेवा-समिती वालों ने इसकी लाश को एक मैली-सी धोती में लपेट कर आग की भेंट कर दिया।

: ५ :

मुझे कुत्ते ने काटा

बात में से बात निकल आती है। इसलिये संभव है आप पूछ बैठें कि "मुझे कुत्ते ने काटा" के स्थान पर "मुझे पागल कुत्ते ने काटा" शीर्षक क्यों न सूझा ? इस प्रश्न के उत्तर में मेरा निवेदन यह है कि इस घटना के बरसों बाद आज भी मुझे यह पता नहीं कि वह कटखना कुत्ता पागल था या नहीं। वस्तुतः पागल और मामूली कुत्ते में इतना ही भेद है जितना कि एक पागल और समझदार आदमी में। यह भेद बड़ा सूक्ष्म है। इसका पता लगाना कठिन ही नहीं बल्कि कई अवसरों पर तो बड़ा पेचीदा भी हो जाता है। स्वयं मैं अपने जीवन के ऐसे क्षण गिन सकता हूं जब मैंने अपने आपको बिल्कुल पागल पाया है और सड़क पर चलते आदमियों को मुस्करा-मुस्करा कर अपने आप से बातें करते सुना है। किसी-किसी को छड़ी लेकर इस तरह ज़ोर-ज़ोर से घुमाते देखा है मानों वह लड़ाई में तलवार चला रहे हैं। उस समय ऐसी भयानक स्थिति पैदा हो जाती है कि चौक में खड़ा सिपाही भी सन्देह भरी दृष्टि से देख-देख कर दिल में सोचता है कि कहीं यह वही पागलखाने से भागा हुआ पागल तो नहीं जिसका नाम उसकी डायरी में लिखा हुआ है।

इसलिये, जैसा कि मैं ने पहले कहा, एक पागल और होशमन्द कुत्ते की पहचान बहुत कठिन है। डाक्टर भी यह पहचान कुछ देर बाद ही करते हैं। यही कारण था कि जब बाज़ार में चलते-चलते कुत्ते ने मुझे

काट लिया तो मैं अचरज में पड़ गया और पहले कुछ क्षणों में कुछ निश्चय न कर सका कि मुझे क्या करना चाहिये।

बात यह थी कि वह शाम जरा असाधारण रूप से ठंडी थी। बाज़ार में भी असाधारण चहल-पहल थी। मैं एक बड़ा भूरा कोट लपेटे हुए बड़े मजे से सिगरेट के कश लगाता हुआ जा रहा था कि अचानक —जैसे कथा-कहानियों में प्रायः आता है—किसी कुत्ते ने पीछे से आकर मेरी टांग को दबोच लिया—हाँ, खूब याद आया दाहिनी टांग थी और मैं गरम पतलून पहने हुए था। कुत्ते ने पहले तो अपने तेज़ दांतों से पतलून को फाड़ा फिर बढ़कर गोश्त पर भी—जैसा कि कथा-कहानियों में आता है—प्रेम की निशानी छोड़ दी। और यह सब इतनी तेजी और चुप्पी से हुआ कि मैं चकित-सा रह गया। दूसरे क्षण देखा तो कुत्ता आंखों से ओझल था।

कुछ देर तो मैं बिल्कुल सहमा-सा खड़ा रहा। इसके बाद सोचा कि कुत्ते का पीछा करूँ और उसे मार-मारकर कचूमर निकाल दूँ। इधर देखा, उधर देखा; शायद वह उस मोड़ के परे निरंजन दास की दुकान के पास से घूम गया था। मगर किधर? फिर पतलून के लटकते हुए टुकड़ों की ओर देखा और अपने दर्जी के पास जाने का विचार किया। अन्त में बिजली की सी चमक के साथ यह ख़याल आया कि कहीं वह कुत्ता पागल हुआ तो?

यही सोच मैं रामभजमल की अंग्रेज़ी दवाइयों की दुकान पर पहुंचा। इससे जल्दी-जल्दी थोड़े शब्दों में अपनी कहानी कह गया। उसने तुरन्त कारबोलिक तेज़ाब लगा दिया, पट्टी बांधी और एक पौडर देकर कहा "इसे दो घूंट गरम पानी के साथ पी लेना। कल बड़े अस्पताल चले जाना और टीका लगवा लेना—ज़रूर—समझे?"

मैं दो दिन निरन्तर सोचता रहा कि बड़े अस्पताल जाकर टीका

लगवाने में लाभ है या नहीं। कुछ मित्रों ने सलाह दी कि "मियां! जाने दो, आजकल सर्दियों में कुत्ते पागल होते ही नहीं। फिर, टीका लगाना बहुत बड़ी मुसीबत है। तुमने इसे आसान समझा है शायद। सारा पेट सूज जाता है। हमारे पास वाली कोठी में एक बूढ़े वकील को कहीं कुत्ते ने काट खाया था। उसने पहले तो कुत्ते को गोली का निशाना बनाया और बाद में टीका लगवाते फिरे। सारा पेट सूज गया। छः महीने बिस्तर पर पड़े रहे। बूढ़े आदमी थे, टीका कराते २ ही मर गये।"

कुछ मित्रों ने कहा "लाल मिरच और सुरमा पीसकर घाव पर लगाया करो। थोड़े दिनों में आप ही आप सारा विष रिस रिस कर बह जायगा। भला, जब हमारे देश में टीका नहीं था तो क्या कोई इलाज नहीं होता था?"

अहमद ने कहा 'भई, मैं तो खरी खरी कहूंगा। चाहे कोई बुरा ही मान जाय। असल बात यह है कि यह बहुत ही बुरा रोग है। एक बार रोग के चिह्न प्रकट होते ही रोग असाध्य हो जाता है। इसका काटा तो पानी भी नहीं मांगता। हमारे मुहल्ले में एक नौजवान को कुत्ते ने काट खाया था। बेचारा अपनी मां का इकलौता बेटा था। दस-पन्द्रह दिन यों ही हल्दी-प्याज लगाता रहा। पन्द्रहवें दिन उसे अचानक ज्वर हो गया। खुदा की कसम, बिस्तर में पड़ा-पड़ा छत तक उछल उछल जाता। कितना बुरा रोग है। इसमें आदमी एक हवा का झोंका तक सहन नहीं कर सकता, सारा शरीर कांपता है। और पानी?......पानी तो हरगिज़ नहीं पी सकता। दूसरे दिन वह इस संसार से चल बसा।"

यह कहकर अहमद ने अपनी आंखें ऊपर चढ़ालीं और छत की ओर देखने लगा।

अहमद के इस बयान ने कि "वह बिस्तर में पड़ा पड़ा छत तक उछल उछल जाता था" मुझ पर बहुत असर किया। यह चित्र मेरी

आँखों के सामने खिंच गया कि मैं छत तक उछल उछल कर छत पर सिर से टक्करें लगा रहा हूँ। घर वाले, मित्र कुटुम्बी, बीवी-बच्चे सब मुझे रोकते हैं, मगर मैं किसी के वश में नहीं आता। सिर से खून निकल चला है, माथा फट गया है। मेरी पत्नी सिर पीट रही है। बड़ा लड़का मेरे पांव पकड़े रो रहा है। लोग मेरी अर्थी का जुलूस बना रहे हैं। यह मेरी क़ब्र है। मेरी समाध पर काले अक्षरों में ज़ौक़ का यह शेर लिखा है :

सगे दुनिया पस-अज़ मुरदन भी दामनगीर दुनिया हो
कि इस कुत्ते की मिट्टी से कुत्ता-घास पैदा हो।

इतने में अहमद ने आंखें झुकाकर मेरी ओर देखा। और कहा : "हां, मियां, कल ज़रूर बड़े अस्पताल जाकर टीका लगवाना। कोई हँसी नहीं है, जीने-मरने का प्रश्न है यह।"

बड़े अस्पताल जाकर देखा तो मैं यह देखकर चकित रह गया कि किस तरह कष्ट-पीड़ित कुत्तों की फौज मनुष्य-जाति से बदला ले रही है। प्रायः वही कुत्ते पागल हो जाते हैं जो भूख से सताये हों, जिनका कोई रक्षक न हो, जिन्हें हर जगह से ठोकरें खाने को मिली हों, गर्मियों में कोई पानी तक पीने को न दे और सर्दियों में किसी मकान के गर्म कोने में भी शरण न मिले, सारी देह खुजली के दागों से पट जाय मगर कोई दवा-दारू देने वाला न हो। इन हालतों में अगर किसी का मस्तिष्क घूम जाय तो आश्चर्य क्या? अगर वह दुनिया से बदला लेने पर तुल जाय तो कौन-सा अचम्भा हो जाय?

मुझे निश्चय हो गया कि चाहे वह कुत्ता पागल हो चाहे ना हो, मुझे काटकर वह उस मनुष्य-जाति के विरुद्ध भारी असन्तोष प्रगट कर रहा था जिसने उसकी जाति को गुलाम बना रखा है। गुलामी में कुछ कुत्ते ही खुश रहते हैं। बड़ी संख्या तो ऐसे ही कुत्तों की है

जो बाज़ार में भीख मांगते फिरते हैं—बेचारे कुत्ते !!

एक बड़े कमरे में परचियां लिखी जा रही थीं और रोगियों इतनी भीड़ थी कि मैंने समझा, मैं भूल से किसी निर्वाचन-कैम्प में आया हूं। लेकिन मेरा भ्रम तब दूर होगया जब मैंने मेज़ पर स्टेथस्कोप देखा, जिससे डाक्टर लोग रोगी की छाती ठोकते मैंने भी कुर्सी पर बैठकर पर्ची लिखाई। आप का नाम, पता, ज इन्कमटैक्स—आदि के प्रश्न इतने धाराप्रवाह किये गये कि फिर उस जगह के निर्वाचन-कैम्प होने का संदेह होने लगा। ज में मैं उठ खड़ा हुआ। डाक्टर साहब ने फौरन पर्ची हाथ में देकर क "दूसरे कमरे में टीका लगवाइये, उधर से जाइये।" "आदाब-अ "आदाब अर्ज।"

दूसरे कमरे का दरवाज़ा बन्द था। बाहिर बरामदे में लगभग तीन सौ आदमी बैठे थे। दूर दूर से भाँत भाँत के लोग आए हुए मैली पगड़ियाँ और काली तहमद बांधे ग़रीब जमींदारों का जमाव किसी की बगल में सन्दूकची थी, किसी के कन्धे पर छोटा सा बिस्त था। वहां धूल से पटी दाढ़ियों और सूखे-रूखे मुरझाये चेहरों की प्रधानता थी—जैसे किसी ने ठोकरें मार मार कर पीस दिये वहाँ बूढ़ी औरतें थीं, रोते चिल्लाते नंगे बच्चे थे। कोई उकड़ू बैठा कोई सामने हरी घास पर लेटा हुआ कराह रहा था। कमरा देर बाद खुलता तो चपरासी पर्ची पर से नाम पढ़कर जोर आवाज़ देता; जैसे अदालत में पेशी होती है। तब कोई जाट ल टेकता हुआ भीतर जाता और फिर दरवाज़ा खट से बन्द हो जात मुझे किसी ने बताया "आज आप की बारी नहीं आयेगी। आयेगी भी तो बहुत देर से। कल आप सुबह आयें और इस के दूसरी ओर से खुलने वाले दरवाज़े से जायें तो—मेरे ख़याल अच्छा रहेगा।"

दूसरे दिन सुबह ही उठकर गया। अभी डाक्टर साहब नहीं आये थे। कमरे में एक चपरासी आग सेक रहा था। एक कम्पौन्डर टीके की पिचकारियों को स्पिरिट से साफ कर रहा था। छोटा डाक्टर, याने डाक्टर का सहकारी काँपते हाथों से रजिस्टर में कुछ लिख रहा था।

मैंने पूछा, "डाक्टर साहब अभी नहीं आए ?"

कम्पौन्डर ने जवाब दिया "वह उधर औरतों के कमरे में टीके लगा रहे हैं।"

कुछ देर बाद कम्पौन्डर ने छोटे डाक्टर से बहुत नरमी से कहा : "जी ! आज मेरे छोटे लड़के को बुखार चढ़े हुए पन्द्रहवाँ दिन है।"

"कोई बात नहीं, संभाल लेंगे" कहकर छोटा डाक्टर अंगीठी के पास टहलने में लग गया।

कुछ मिनट बाद आप ने अपनी छोटी छोटी आँखें कम्पौन्डर के चेहरे पर गाड़ दीं और उससे पूछा—"तो उसे बुखार है—खूब, तो पन्द्रह दिन से बुखार नहीं उतरा ?"

इसके बाद फिर चुप्पी छा गई। चपरासी आग तापता रहा, कम्पौन्डर पिचकारियाँ साफ़ करता रहा और छोटा डाक्टर छोटे छोटे कदम उठाकर फर्श पर टहलता रहा। उसके हाथ पतलून की जेबों में थे। आखिर उसने अपने हाथ जेबों से निकाल लिये और बायें हाथ की एक उँगली को दूसरे हाथ के अंगूठे पर रख कर कहने लगा "बुखार ? पन्द्रहवाँ दिन—क्या खांसी भी होती है ?"

"जी नहीं" कम्पौन्डर ने स्पिरिट लैम्प जलाते हुए जवाब दिया।

डाक्टर की भवें तन गईं। मानो, कह रहा था, कितनी बुरी बात है, बुखार के साथ खांसी नहीं।

डाक्टर बोला : 'तो इसका मतलब यह है कि उसे निमोनिया नहीं।'

कम्पौन्डर ने टीके की ट्यूबों को एक-दो-तीन-चार गिनते हुए उत्तर दिया : "जी, बिल्कुल नहीं, बात यह है कि डाक्टर साहब ने उसे देखा

था। उन्होंने कहा था कि "डेढ़ मास के बाद बुखार उतरेगा। दवाई भी वही देते हैं। मैं आपसे कहने लगा था कि.........."

छोटे डाक्टर ने जल्दी से कहा: "ठीक,-ठीक, मैं समझ गया। बड़े डाक्टरों से भी जल्दी में गलतियां हो जाती हैं। मैं खुद उसे चलकर देख लूंगा।"

कम्पौन्डर ने कहा—"आपकी बहुत कृपा होगी। मगर—मगर, मेरा मतलब यह था कि आप बड़े डाक्टर साहब से सिफारिश करदें, मैं तीन-चार दिन की छुट्टी चाहता हूं। लड़का बहुत बीमार है। घर पर बेचारी बीवी अकेली घबराती होगी।"

डाक्टर ने कुछ अफ़सोस के साथ कहा "ओह—मगर,......हां, भाई! माफ़ करना जब बड़े डाक्टर साहब को स्वयं तुम्हारे लड़के की बीमारी का पता है तो खुद उन्हीं से छुट्टी मांग लो। नुस्खा भी तो उन्हीं का है। मैं कैसे सिफारिश कर सकता हूं?"

कम्पौन्डर ने सिर झुका लिया। डाक्टर टहलने लगा।

इतने में एक दरवाज़ा खुला। बड़े डाक्टर साहब अन्दर आये। उनकी मुस्कराहट से ही प्रगट था कि यही बड़े डाक्टर हैं। उनके पीछे-पीछे एक नर्स आई। मैंने टोपी उठाकर इस तरह नमस्कार किया कि दोनों खुश हो जायें। दोनों खुश हो गये।

डाक्टर साहब ने मुस्कराकर कहा "यह पर्ची है, मगर आप कल नहीं आये?"

नर्स ने कहा "मगर घाव तो छोटा सा है, यह तो जल्दी ठीक हो जायगा।"

डाक्टर ने कहा "हां, घाव तो इतना गहरा नहीं, फिर भी टीके तो आप को पूरे चौदह दिन तक लगाने पड़ेंगे।"

मैंने नर्स के लाल चमकते होठों की ओर देखकर कहा "केवल चौदह दिन ?"

नर्स मुस्करा दी। बड़े डाक्टर छोटे डाक्टर से बातें करने में लग गये। छोटा डाक्टर कह रहा था "हां, जनाब ! मैं अभी-अभी कम्पौन्डर से कह रहा था कि बड़े डाक्टर साहब का नुस्खा बहुत ही अच्छा है। और जनाब रोग का निदान इस खूबी से ढूंढते हैं कि रोग को जड़ से पकड़ लेते हैं। जी हाँ, मियादी बुखार के सिवा और क्या होगा ? जी, बिल्कुल ठीक। बजा फरमाते हैं आप। यह छुट्टी लेकर क्या करेगा ? यहाँ आगे ही क्या थोड़ा काम है ? ३-४ सौ रोगियों को रोज देखना पड़ता है।

इतने में दरवाज़ा फिर खुला और नीली वर्दी पहने हुए एक चपरासी अन्दर आया। वह बड़े डाक्टर साहब के पास आकर बोला "बड़े डाक्टर आप को याद करते हैं।"

जब बड़े डाक्टर चले गये तो मैं सोचने लगा: कितनी विचित्र बात है। इस महाजनी दुनिया में हर कोई दूसरे से बड़ा है। छोटा डाक्टर है, बड़ा डाक्टर है और फिर उससे भी बड़ा डाक्टर है। दासता के इस आवर्त्त का क्या कहीं भी अन्त नहीं ? जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे दर्जे बने हुए हैं, हर कोई गुलाम है।

नर्स बोली : 'तुम बड़े शरीर हो।'

मैंने कहा : "मैं बिल्कुल भोला हूँ। मुझे पागल कुत्ते ने काटा है। कितना दुखी हूँ मैं !"

नर्स ने मटककर कहा "मैं इन भोली शरारतों को खूब समझती हूँ— अच्छी तरह।"

मैंने कहा: "तुम बहुत सुन्दर हो— लो अब तो पीछा छोड़ दो। यही बात तुम मेरे मुख से कहलवाना चाहती थीं न ?"

नर्स—"बिल्कुल नहीं। मैं तुम्हारी चालों को खूब समझती हूँ।"

यह कहकर वह मेज के पास आगई और पिचकारियों में दवा भरने लगी।

मैंने नर्स से पूछा : "भला यह तो बताओ, एक बार ही पूरे टीके लगा लिये जायें, तो अगर फिर कोई कुत्ता काट ले तो उस सूरत में दोबारा टीके..." मैंने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

नर्स : "तुम्हारा क्या इरादा है? मुझे तुम भले आदमी दीखते हो। क्या तुम सारे शहर के पागल कुत्तों से अपने आप को कटवाना चाहते हो?"

मैं— "यह मैंने कब कहा?"

नर्स— "तो फिर?"

मैं— "मेरा मतलब यह था कि आखिर तुम्हारा भी कोई कुत्ता होगा?"

नर्स— "है, मगर वह तुम्हारी तरह पागल नहीं।"

मैं— (झेंपकर) "उसका नाम क्या है?"

नर्स— "टेडी।"

मैं— "कितना भोंडा नाम है। तुम्हें नाम रखने की समझ तो होनी चाहिये।"

नर्स— "शट-अप।"

फिर वह तुरन्त हँस पड़ी। कहने लगी "अपनी पर्ची दिखाओ। कितनी दवाई भरनी है; पांच सी-सी या सात?"

इतने में बड़े डाक्टर साहब अन्दर आये (अब इन्हें मझले डाक्टर कहा जाय तो अधिक उचित होगा)। आकर कहने लगे "आइये, आपको टीका लगायें।"

एक चुटकी में पसलियों के पास सूई घोंप दी और कहने लगे "आप को कष्ट तो नहीं हुआ?"

मैंने डाक्टर साहब की ओर देखा। नर्स की आंखों में आंखें डालीं और तुरन्त जवाब दिया "बिल्कुल नहीं, डाक्टर साहब!"

डाक्टर साहब ने पेट से सूई निकालते हुए कहा "मेरा ख़याल है (कम्पौन्डर से) तुम ने पिचकारी में दवाई नहीं भरी, क्यों ?"

कम्पौन्डर ने हिचकिचाते हुए कहा "जी! मुझे ठीक याद नहीं आता। शायद........"

नर्स जल्दी से बोली "तो कोई हर्ज नहीं, इन्हें कष्ट तो होता नहीं। दूसरी पिचकारी कर दीजिये।"

डाक्टर ने कहा, 'हां यह ठीक है।'

दूसरे इन्जेकशन के बाद—

मैंने टोपी उठाई और कहा "गुड मार्निंग डाक्टर साहब" (नर्स को) "गुड मार्निंग !"

डाक्टर—(मोटी और थकी हुई आवाज़ में) "गुड मार्निंग !"

नर्स—"गुड मा...र्निंग।"

उसकी आवाज़ पतली और बारीक थी। जैसे दवाई पीने के बिलौरी गिलास के साथ एक चमचा टकरा जाए।

\+ \+ \+

कमरे से निकलकर मैं बड़े-बड़े बरामदों में से गुजरता हुआ उस भव्य कमरे में पहुँचा जिसके ऊपर नीले कलसों वाले गुम्बद खड़े हैं। और चारों दरवाजों पर नीली पोशाकों वाले चपरासी खड़े हैं। इसी भव्य भवन की छत के नीचे बूढ़ा किसान और उसकी बीवी छोटे डाक्टर के आगे हाथ जोड़े हुए वापिस जाने का किराया मांग रहे थे।

छोटे डाक्टर ने क्रोध में आकर कहा—"मगर, एक बार जो कह दिया कि तुम्हारे कागज़ात कलेक्टर साहब को भेज दिये हैं। तुम्हें वापसी का किराया मिल जायगा।"

बूढ़े किसान ने रोते हुए कहा: "साहब! हम यहां परदेसी हैं। हरगोई में साहब ने कहा था कि वापिस जाने का किराया यहां से मिल जायगा। चौदह दिन हम मियां-बीवी आपके सहारे ही यहां पड़े टीके

हाय बाबूजी धीरज कैसे आये ?"

सरजीत—"ईश्वर की यही इच्छा थी। उसने तुम्हें दिया और उसीने ले लिया। तुम्हारा उस पर इतना ही हक था।"

फ़िरोज़—"सच है बाबूजी, मनुष्य क्या कर सकता है ?"

दत्त—"कैसा प्यारा बच्चा था, जगदीश! तुम्हें याद है वह दिन। वह इस नहर के किनारे अपनी छोटी सी कमीज़ धो रहा था। कितना प्यारा मालूम होता था। याद है मैंने तुमसे कहा था कि इस समय कैमरा होता तो इसका चित्र उतार लेते और अख़बार में भेजकर इनाम पाते।

सईदा अब तक पास खड़ी चुपचाप सब बातें सुन रही थी और आँचल से आंसू पोंछती जाती थी। अब वह भरी हुई आवाज़ में बोली—"बाबूजी, कुँवर लोकनाथ सिंह जी ने जो डाक-बंगले के पास एक कोठरी में रहते हैं, एक बार मंजूर की तस्वीर खींची थी। हमने कई बार उनसे तस्वीर मांगी है, मगर वे देते नहीं। अगर आप उनसे कहें तो..."

जगदीश ने कहा—"बहुत अच्छा सईदा, मैं ज़रूर उनसे कहूंगा। आशा है कि वह तस्वीर दे देंगे।"

अब हम सब तालाब के किनारे पहुंच चुके थे। तालाब की विस्तीर्ण जलराशि हमारे सामने थी। इस पर कहीं-कहीं नीलोफर के फूल खिले हुए थे। मैं हाथ फैलाकर एड़ियां उठाकर गोता लगाने को था, कि सरजीत ने धीमे से मेरे कान में अंग्रेज़ी में कहा—"पीछे देखो।"

मैंने मुड़कर देखा। किनारे के वृक्ष के पास जंगली बेलों के बीच एक लड़की खड़ी थी। वह जंगली गुलाब के फूलों की तरह सुन्दर और कोमल थी। उसकी दोनों कलाइयां ऊपर उठी हुई थीं और सिर पर

रखी हुई मिट्टी की गागर को थामे हुई थीं। सईदा उसके पास खड़ी कुछ कह रही थी। वह कितनी नाजुक, कितनी सलोनी थी! तीखे-तिरछे नयन और सुघड़ चेहरा। क्या एक औरत भी इतनी सुन्दर हो सकती है? मुझे कल्पना हुई यह औरत नहीं चित्रकार चगताई का एक चित्र है।"

मैंने सरजीत से पूछा—"यह कौन है?"

सरजीत ने आश्चर्य दिखाते हुए कहा—"तुम नहीं जानते यह कौन है? यह तालाब के उस पार जो कच्चा सा घर है, वहाँ रहती है। सब-जज साहब का लड़का जो यहाँ नहाने के लिए आया करता है, इसे बड़ा चाहता है। उसने इसका नाम 'तालाब की सुन्दरी' रख दिया है।"

"तालाब की सुन्दरी..............तालाब की सुन्दरी........ मैंने दोहराते हुए कहा—"अच्छा तो यह सईदा से इशारों में क्यों बात कर रही है?"

"बेचारी ग़रीब लड़की गूंगी है न?"

"ओह"—अचानक मेरे दिल में ख़याल आया, यह लड़की गूंगी है, तो बहुत अच्छा है। चगताई का चित्र भी तो नहीं बोलता। अगर चित्र बोल उठे, तो उसका आकर्षण समाप्त हो जाता। अच्छा होता अगर संसार की सारी सुन्दर स्त्रियां गूंगी होतीं।

हम सब की आंखें अपनी ओर गड़ी देखकर वह लड़की हैरान हो गई। उसने अपनी बड़ी-बड़ी हिरणों जैसी आंखों से हमारी ओर देखा। वह घबरा कर ठिठक सी गई। उसने हमारी ओर से चेहरा मोड़ लिया। उसके कानों में पड़े हुए मोतियों के बुंदे अचानक सूरज की किरणों में चमक उठे। उसने सईदा की ओर देखकर सिर को एक हलका-सा झटका दिया। मिट्टी की गागर में एक हलकी-सी लहर पैदा हुई। पांव की झांजन बजने लगी। मौन-चित्र में जीवन की लहर दौड़ गई। वह धीरे-धीरे पगडण्डी पर से नीचे उतरने लगी।

मैंने अचानक कहा—"तुम जानते हो सरजीत, हिन्दुस्तानी चित्रकला का आविष्कार कैसे हुआ ?"

"कैसे हुआ !"

मैंने पगडण्डी पर से नीचे उतरती हुई लड़की की ओर इशारा करके कहा—"वह देखो, एक मिट्टी की गागर उठाए हुए लड़की, और पैरों पर बजती हुई रुपहली झांजनें—यही हिन्दुस्तानी चित्रकला का आदि और अन्त है।"

जगदीश ने हंसते हुए कहा—"मेरा विचार है तुम इस ग़रीब लड़की को आंखों से निगल जाओगे। कैसी टकटकी से देख रहे हो। अब नहाते हो कि दूं मैं तुम्हें पानी में एक गोता ?"

इतना कहकर जगदीश ने बाहें फैलाकर एड़ियां उठाकर हवाई चील की तरह उड़ान भरी और दूसरे ही क्षण वह पानी में धम् से गोता लगा गया।

इसके बाद धम-धम-धम हम सब पानी में कूद पड़े और आकाश हमारे कहकहों से गूंज उठा। हम पानी की सतह पर बाहों के तेज़ चप्पू चला रहे थे। एक-दूसरे पर पानी उछाला जा रहा था। नीलोफ़र के फूल तोड़-तोड़कर एक-दूसरे की ओर फेंके जा रहे थे। दत्त बार-बार मुंह में पानी भरकर ज़ोर से कुल्लियां करता था। सरजीत को तैरना कम आता था, इसलिये वह सबसे अलग-थलग धीरे-धीरे हाथ-पांव मारकर तैरने का अभ्यास कर रहा था। जगदीश उसके सिर को अपने बाज़ुओं में थामकर प्यार से डुबकी दे रहा था। किनारे पर फ़िरोज़ मुरझाई आंखों से तालाब के पानी की ओर देख रहा था।

फ़िरोज़ की उदास आंखें मेरे दिल में एक विचित्र हलचल पैदाकर रही थीं। मैंने-मैंने मैंने सोचा, इस जीवन के अस्थिर तालाब में सदा यही खेल होता रहेगा। यहाँ हँसी की लहरें हैं और मौत के छींटे भी। और फिर कभी-कभी कोई सुन्दर पुजारी........।

: ७ :

केवल एक आना

सरोश 'किंग जार्ज डाक्स' पर गया। वहां उसे एक फ़ोरमैन मिल गया। फ़ोरमैन ने एक नीले रंग की कमीज़ और पतलून पहन रखी थी, जिस पर जगह-जगह तेल के धब्बे नज़र आते थे। उसकी छोटी-सी नाकपर एक बड़ी-सी ऐनक थी। देखने से वह एक गन्दा, बदसूरत किन्तु दयालु आदमी मालूम होता था। सरोश को इसकी आँखों में नरमी और दया की हलकी-सी झलक दिखाई दी। उसने फ़ोरमैन से मिलते ही कह दिया कि वह एक 'बेकार' है और किसी काम की खोज में यहां आया है।

"तुम क्या कर सकते हो? फ़ोरमैन ने पूछा।

"मैंने बी०ए० की डिग्री पाई है"—सरोश ने जल्दी से उत्तर दिया।

"डिग्री से क्या? तुम बोझ उठा सकते हो, भारी बोझ?"

"नहीं।"

"क्रेन पर काम कर सकते हो?"

"नहीं तो—मगर, शायद कर सकूं—मेरा पिता इंजीनियर था—और मैं कई दिनों से भूखा हूं।"

फ़ोरमैन हँस पड़ा और बोला, "तुम मुझे अच्छे आदमी दिखाई देते हो। तुम्हारी सहायता कर सकता तो मुझे प्रसन्नता होती। यहां हम डिग्री वालों को नौकरी नहीं देते। प्रायः वे बहुत कमज़ोर होते हैं। काम करने की शक्ति उनमें बहुत कम होती है। और फिर तुमने

तो हुनर भी नहीं सीखा। मुझे दुःख है, हां—अगर तुम हावड़ा पुल पर जाओ तो शायद काम बन जाय। मैंने सुना है वहां पढ़े-लिखे लोगों को काम दिया जाता है।"

"कहां ?" सरोश ने पूछा।

"हावड़ा पुल पर।"

सरोश हावड़ा पुल पर गया।

लकड़ी के तख्तों से बने एक छोटे से केबिन में—जिसकी खिड़कियों में लाल और हरे रंग के शीशे लगे हुए थे—एक यूरेशियन बैठा था। वह सरोश से बोलाः—"तुम जानते हो, तुम्हें यहां क्या करना पड़ेगा।" यूरेशियन ने अपनी नाक के नथनों को सहलाते हुए फिर कहा "बहुत मुश्किल काम है, शायद तुम नहीं कर सकोगे। मुमकिन है तुम उसे पसन्द भी न करो।"

सरोश ने कहा "क्या काम होगा—जो कोई भी काम हो, मैं करूंगा"

यूरेशियन ने मुस्कराते हुए कहा "हम वेतन अच्छा देते हैं। तीन रुपये रोज। और काम केवल दस घण्टे।" यह कहकर वह हुगली के गदले पानी की ओर देखने लगा। फिर वह सरोश की ओर मुड़ा और पूछा :

क्या तुम यूरेशियन हो ?"

"नहीं।"

"हूं...मेरा भी यही ख्याल था।

"क्या तुम लोहे की कील को लकड़ी के तख्ते में सीधा गाड़ सकते हो ? मैं तुम से यह प्रश्न इसलिये पूछ रहा हूं कि यही काम तुम्हें इस पुल पर करना होगा। कीलें गाड़ना, दिनभर तख्तों के तख्तों में कीलें गाड़ते चले जाना। क्या तुम यह काम कर सकोगे ?"

सरोश ने उत्तर दिया "कर सकूंगा.....मेरा बाप इंजीनियर...

"मुझे तुम्हारे खान्दानी काम से कोई दिलचस्पी नहीं" कहकर वह कुछ देर के लिए रुका। फिर सरोश की ओर देखकर कहने लगा:—"साठ रुपये इस काम के लिये देने होंगे।"

बड़ी सरलता से यूरेशियन ने ये शब्द कहे और सरोश के उत्तर की प्रतीक्षा करता हुआ सरोश की ओर देखने लगा।

सरोश ने दबी और धीमी आवाज़ में जवाब दिया "लेकिन मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं।"

यूरेशियन को क्रोध आ गया। आग-बबूला होकर बोला "तुम मुझे क्या निरा भोंदू समझते हो? मेरे पास नौकरी को क्यों आए? क्या मैं तुम्हारा चचा लगता हूं।" फिर मेज पर मुक्का मारकर कहने लगा "हम यहां केवल यूरेशियन लोगों को नौकरी देते हैं। समझे? लेकिन मैं इसकी भी परवाह न करता। साठ रुपये क्या ज्यादा हैं? तुम्हें तो यह काम भी नहीं आता। क्या तुम एक लोहे की कील सीधी तरह लकड़ी के तख्ते में ठोक सकते हो? मुझे तो सन्देह है इसमें। तुमने कहीं शिल्प-शिक्षा भी नहीं ली। कारखाने में कभी काम भी नहीं किया। फिर भी मैं तुम्हें अवसर देता हूँ। ६०) अधिक नहीं हैं। जब तुम नौकर हो जाओगे, तीन रुपये रोज कमाओगे तो मुझे धन्यवाद दोगे। लाओ, निकालो रुपये"—यह कह कर यूरेशियन ने अपना लम्बा व्याख्यान समाप्त किया। और वह सरोश की ओर बड़े ध्यान से देखने लगा।

सरोश ने कांपते हुए कहा, "लेकिन......लेकिन मेरे पास तो एक कौड़ी भी नहीं। ईश्वर की शपथ लेकर कहता हूं।"

यूरेशियन ने उत्तर में कुछ न कहा। अपने कन्धों को उचकाते हुए बाहर देखने लगा।

सरोश ने धीमे से कहा "मैं अपने वेतन से दो रुपया रोज तुम्हें देने को तैयार हूं—अगर..."

यूरेशियन ने अपने विशेष एंग्लो-इण्डियन ढंग से उत्तर दिया "सब

व्यर्थ की बातें हैं। एक बार......जिस दिन तुम्हारा नाम रजिस्टर में दर्ज हो गया तुम मेरे हाथ से निकल गये।"

सरोश कुछ क्षण चुप रहा। वह हैरान था कि क्या कहे। साठ रुपये कहां से लाये? किस से मांगे, कौन उधार देगा? उसके पास तो कोई ऐसी चीज़ भी न थी जिसे वह गिरवी रख सकता। वह दो दिन से भूखा था। इसलिये वह यूरेशियन से गिड़गिड़ा कर बोला: "आप मुझ पर विश्वास रखें। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूं कि......"

लेकिन यूरेशियन ने उसे वहीं रोक दिया, कहने लगा "चलो, निकलो यहां से। क़समें खाते हो, यह कोई गिरजाघर है?"

जब सरोश बाहर निकला तो पश्चिम में सूरज डूब रहा था। एक जहाज़ की घंटी चीख चीख कर जहाजी मजदूरों को बुला रही थी। हुगली का पानी सूरज की किरणों से लाल हो गया था। सरोश को लगा जैसे किसी ने आकाश के पश्चिमी कोने में सूरज का खून कर दिया है। और अब उसका खून बहकर हुगली में आ रहा है। उसे सारे आसमान पर मौत की छाया नज़र आ रही थी। लकड़ी के तख्ते से एक सड़ी लाश की सी बदबू उठ रही थी। अचानक पास के घाट से कौवों का एक दल कड़वी आवाज़ में कांय-कांय करता हुआ पश्चिम की ओर उड़ गया। सरोश ने एक आह भरी और यूं ही किसी भी दिशा की ओर कदम उठा दिये।

सरोश ने कूड़ा-करकट उठाने वाली कारपोरेशन की लारी को देखा। वह एक दुकान के सामने सड़क पर खड़ी थी। लारी चलाने वाला पास की दुकान से पान खरीद रहा था। अचानक एक छोटा सा बादामी कुत्ता गली में से निकला और सर्दी से ठिठुराता हुआ दुम दबाये हुए लारी के पास पहुंचा और लारी के पहियों को सूंघने लगा। उसके बाद पतली सी आवाज़ में चिल्लाने लगा। कुत्ता शायद कई

दिन से भूखा था। कूड़े से लदी लारी से निकलती हुई अमोनियां की दुर्गन्धि उसके नथनों में घुसी जा रही थी और उसके दिमाग़ पर छाती जा रही थी। भूखे सरोश ने अनुभव किया कि अगर उसके सामने इस समय भुनी हुई मछली की प्लेट रखी हो तो उसकी आकर्षक गंध भी इसी तरह उसके दिमाग़ को परेशान कर देगी।

कुत्ते की चीं-चीं का स्वर ऊँचा होता गया। वह पहिये के चारों ओर चक्कर काट रहा था। बेचारा लारी के ऊपर नहीं चढ़ सकता था। शायद वह अपने कल्पना-लोक में स्वादिष्ट पकवानों के सपने देख रहा था। इतने में ड्राइवर आ गया। उसके हाथ में पानों का पुलिन्दा था। आते ही उसने कुत्ते की कमर में ज़ोर से एक लात मारी। एक लम्बी ऊँची चीख़ निकली। ऐसी चीख़ थी वह जैसे हन्टर मारने पर किसी ग़रीब के मुख से निकलती है। बेचारा कुत्ता भाग निकला। उसकी छोटी सी दुम पिछली टाँगों के बीच से गुज़र कर पेट से जा चिपकी थी। भागता-भागता कुत्ता सड़क के दूसरी ओर जहां सरोश खड़ा था, चला गया। सरोश को चुपचाप खड़े और उसकी आंखें अपनी ओर उठी देखकर उसने अपनी चीं-चीं कम कर दी। फिर दो-तीन लम्बी चीखों के बाद वह चुप हो गया और सरोश के पास खड़ा होकर उसकी ओर देखते हुए दुम हिलाने लगा।

क्या जाने किसी आशा से या सहानुभूति से ?

थोड़ी देर में कुत्ता सरोश के पैरों के गिर्द घूमने लगा। ठीक उस तरह जैसे वह पहले लारी के पहियों के गिर्द घूमता था। लेकिन अब वह अधिक आशान्वित मालूम होता था। उसकी दुम तेज़ी से हिल रही थी। वह बार-बार ज़मीन सूंघ रहा था। फिर वह अचानक खड़ा हो गया, अपनी छोटी आँखें सरोश के चेहरे पर जमा दीं और दुम हिलाने लगा।

"एक बिस्कुट खाओगे, बिस्कुट ?"

यह सरोश का अन्तिम बिस्कुट था। उसने जेब से निकाल लिया।

बिस्कुट बड़ा करारा मालूम होता था। कुत्ते ने बिस्कुट देख लिया और छोटी-छोटी चीखें मारता हुआ सरोश के आसपास उछलने लगा। और ज़ोर-ज़ोर से दुम हिलाने लगा।...आखिर सरोश को बिस्कुट देना ही पड़ा...कुत्ते ने एक क्षण में उसे गले से नीचे उतार लिया। एक क्षण भी अधिक समय होता है, इससे भी कम समय में। कुत्ते की आँखों में शायद कृतज्ञता के आंसू भी आ गये थे। एक ओर भूखा आदमी था, दूसरी ओर भूखा कुत्ता और अब दोनों सड़क के किनारे चुपचाप खड़े थे। जैसे दोनों ही दुनियां से बाहर धकेल दिये गये हों।

एक लम्बे समय के बाद सरोश ने सिर झुकाया और एक ओर को चल दिया। कुत्ता भी धीरे-धीरे उसके पीछे आ रहा था।

वह रात उसने सियालदह स्टेशन पर काटी। वेटिंग-रूम का पक्का सीमेंट का फर्श ठण्डा और कठोर था। उसे वेटिंग-रूम कहना भी ज़रा कठिन था। क्योंकि वह एक कमरा नहीं था, बल्कि केवल एक बरामदा था, जो तीन ओर से खुला था। छत पर पुरानी टीन की चादरें थीं और कहीं-कहीं लोहे के खम्भे छत को सहारा दे रहे थे।

सरोश ने इस बरामदे से बाहर काले आकाश पर अङ्गारों की तरह चमकते हुए तारों को देखा और एक पीला, मटमैला सा चांद भी उसे दिखाई दिया। यह चांद उसे एक पके हुए 'रिलायन्स केक' जैसा लगा जो अभी-अभी अंगीठी से बाहर निकला हो। सरोश थका था, भूखा था। दिन भर वह मीलों चलता रहा था और कलकत्ते की गलियों, उसके शानदार बाज़ारों और चौकों में घूमता रहा था। वह एक पागल आदमी की तरह चक्कर काटता रहा था—किन्तु उसे कहीं नौकरी नहीं मिली थी। शायद लोग उसके मुरझाये चेहरे को देखकर डर गये थे। मानों किसी जादूगर ने लोगों को सम्मोहित कर दिया हो, लेकिन क्यों?

लेकिन सरोश को इन बातों की परवाह न थी। वह आज बहुत थका हुआ था। उसका दिमाग़ काम करने से रुक गया था। वह

अनुभव कर रहा था कि शायद उसके धड़ के साथ टांगें नहीं हैं। फिर उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई शरीर के अन्दर जाकर उसकी हड्डियों को तोड़ रहा हो, उसके पेट को मुट्ठी में लेकर ज़ोर से भर्ची रहा हो और उसके हाथ पर तेज़-तेज़ छुरियां भोंक रहा हो......

उसने अपनी टाँगें फर्श पर पसार दीं और बाहें फैला दीं। सीमेन्ट का फर्श खूब ठण्डा था। उसे थोड़ा सा चैन मिला। थकान से ऐंठी हुई नसें थोड़ी ढीली होने लगीं। अब उसे अगर कहीं से थोड़ी सी रोटी—एक-दो टुकड़े—ही मिल जाते तो वह चैन से सो जाता। किन्तु कितना मूर्ख था वह! बिस्कुट तो कुत्ते को खिला दिया था, और अब खुद भूखा मर रहा था।...सरोश धीमे-धीमे अपनी नंगी बाहों को फ़र्श पर फैलाने लगा। फ़र्श खूब ठण्डा था; ठण्डा, साफ़ और सूखा—वह सड़क के फुटपाथ की तरह गीला और गन्दा नहीं था। सोचने लगा, मुझे आगे से यहीं सोना चाहिये। इस समय यहां अधिक मुसाफ़िर भी नहीं थे, सुनसान सी ही थी वहां। फिर वहां उस समय कोई पुलिस का सिपाही भी नज़र नहीं आ रहा था। और किसी भले मानस ने बड़ी कृपा करके बिजली की बत्ती भी तोड़ दी थी।...अचानक इसका हाथ किसी नरम और गरम चीज़ से छू गया। यह भी एक हाथ था। यों ही, बिना किसी विचार के उसने उस हाथ की अंगुलियों को छुआ, फिर हथेली को, फिर कलाई को। तब उसे मालूम हुआ कि उसके पास ही एक औरत घुटने समेटे हुए लेटी थी। वह उसका हाथ पकड़े हुए था। वह सो रही थी। उसकी काली बांह नरम और मुलायम थी। उसकी नसें खून के प्रवाह से गरम थीं। उसका सांस ठीक चल रहा था। अचानक पलट कर वह इसकी ओर मुड़ी।

"तुम कौन हो", औरत ने एक दबी सी आवाज़ में पूछा और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से सरोश की ओर देखा। फिर उन्हें बन्द कर लिया। वह एक ग़रीब भीख मांगने वाली औरत थी। वह ग़रीब थी,

सो रहे हो। वहां उसका कौन है? न मां, न भाई, न बहन। और तुम खर्राटे ले रहे हो, आराम से, जैसे तुम्हें किसी बात की चिन्ता ही नहीं। मैंने अभी-अभी अपने छोटे महमूद को सपने में देखा है। वह एक मैले-कुचैले बिस्तर में पड़ा बुख़ार से तप रहा था। उसका बदन अंगारों की तरह गरम था। वह कराहते हुए 'अम्मां—अम्मां' कह रहा था।" यह कह अम्मां जोर से रोने लगी।

अम्मां का 'छोटा महमूद' और मेरा बड़ा भाई लाहौर बी. ए. में पढ़ रहा था। तीसरे साल में था वह। मैं एफ. ए. की सालाना परीक्षा देकर लाहौर से यहां मई के महीने में आ गया था। किन्तु महमूद को अभी लाहौर की तपती हुई मिट्टी में और भी रहना था। लेकिन अब जून का महीना गुज़र गया था और महमूद अभी तक लाहौर से वापस नहीं आया था। अम्मां बहुत परेशान थीं। सच पूछो तो हम सभी बहुत चिन्तित थे। हमने उसे परसों एक तार भी दे दिया था और बहुत दिनों बाद कल ही महमूद का पत्र आया था। थोड़े से शब्द लिखे थे। लिखा था, "मैं बीमार हूँ। मलेरिया है। लेकिन अब दूर हो रहा है। कुछ दिनों से यहां बहुत वर्षा हो रही है। लाहौर का यह हाल है तो इस्लामाबाद का क्या हाल होगा? क्या कश्मीर जाने का रास्ता खुला है? जल्दी लिखो कि किस रास्ते से आऊँ। जम्मू-बनिहाल रोड से आऊँ कि कोहाला-उड़ी के रास्ते। कौन सा रास्ता ठीक होगा?"

हमने सोच-विचार के बाद एक और तार दे दिया था। यद्यपि वर्षा बहुत हो रही थी और दोनों सड़कें [illegible] में थीं फिर भी कोहाला-उड़ी-रोड बनिहाल रोड की अपेक्षा अच्छी थी। इसलिये यही उचित समझा कि महमूद कोहाला रोड से आये। अब आधी रात के [illegible] पर [illegible] सूचित [illegible] नहीं।

अम्मां की नींद हराम हो गई थी। घबराहट से बोलीं, "तो इसका क्या किया जाय?" इन्हें तो दिन में [illegible] की [illegible] से डरा जाते हैं।

भला इसका इलाज क्या है ? महमूद कोई छोटा बच्चा तो है नहीं। तुम्हें चिन्ता किस बात की है ? हज़ारों माताओं के लाल लाहौर में पढ़ते हैं, होस्टलों में रहते हैं। आता ही होगा। अगर आज सुबह वह लाहौर से चला तो शाम को रावलपिण्डी पहुंच गया होगा। कल कोहाला, और...।"

अम्मां जल्दी से बोली, "और—और ? क्या बातें करते हो? अगर ईश्वर न करे, उसका ज्वर टूटा न हो तो फिर ? मैं पूछती हूं, फिर क्या होगा ?" यह कहकर अम्मां रुक गई और दुपट्टे से आँसू पोंछ कर कहने लगी, "मुझे मोटर मंगवा दो, मैं अभी लाहौर जाऊँगी।"

"अब तुम से कौन बहस करे, हमें तो नींद आई है।" यह कह कर अब्बा करवट बदल कर सो गये।

मैंने भी यह उचित जानकर आँखें बन्द कर लीं। किन्तु कानों में अम्मां की मन्द-मन्द सिसकियों की आवाज़ बराबर आ रही थी। मैं आँखें बन्द किये सोचने लगा। क्या दिल है मां का और कितनी विचित्र ममता है इसकी ? मां का दिल, मां का प्यार दुनियां में सब से निराला है। क्या यह भी वैसा ही मोह है, वैसी ही वासना है जैसी दूसरी वासनायें हैं ? क्या इसका आधार भी शारीरिक है ? बेटा मां के मांसपिण्ड का ही एक भाग होता है, क्या इसीलिये वह प्यारा लगता है ? क्या दार्शनिक विचारों के अनुसार हम सब जुदा-जुदा हैं, अकेले हैं ? कोई किसी का साथी नहीं। एक दूसरे को अपना समझते हुए भी वस्तुतः अपरिचित हैं। मैं भी तो महमूद का भाई हूँ। मेरी नसों में भी तो वही रक्त है। हम दोनों एक दूसरे को चाहते हैं और अपने जीवन के बीस वर्षों में केवल थोड़े समय के लिये एक दूसरे से अलग रहे हैं, फिर भी मैं इतना बेचैन नहीं हूँ। क्या हम सब पत्थरों की चट्टानों की तरह हैं या मिश्र की मीनारों की तरह हैं—सुन्दर किन्तु बेजान।

बुद्ध ने कहा था कि यह दुनिया धोखा है, माया है। होगी, लेकिन

विश्वास नहीं होता। आखिर ममता—यह सुन्दर भावना कहां से आई? और दुनियां के एक कोने में सिसकती हुई मां की ममता भी क्या धोखा है? सच जानिये, विश्वास नहीं होता।

"महमूद...मेरा नन्हां महमूद...मेरा लाल!"

अम्मी हल्की-हल्की सिसकियों में भाई का नाम ले रही थी। कितनी साधारण-सी बात थी। भाई साहब शायद अभी लाहौर में ही होंगे। दावतें उड़ाते होंगे, सिनेमा देखते होंगे, या काश्मीर के रास्ते में किसी पड़ाव पर सोये नींद में सुन्दर सपने देख रहे होंगे। मलेरिया का बुखार शायद चढ़ा ही न होगा, मैं भाई साहब के बहानों को खूब जानता हूँ। अम्मां भी जानती हैं—मगर, फिर भी रो रही हैं। आखिर क्यों? ममता...शायद यह कोई आत्मिक भावना है। शायद इस विस्तृत विश्व में हम अकेले नहीं हैं। शायद हम पत्थरों की तरह बेजान नहीं हैं। शायद इस मानवी मिट्टी में किसी दैवी आग के अंगारों की तड़प है। मुझे 'मोपासां' की कहानी याद आ गई, जिसमें उसने अकेले-पन का रोना रोया है। बेचारा मोपासां! वह बेचारा प्रेमरहित दार्श-निकों की तरह बहुत बार प्रेम भरी घटनाओं का सच्चा अर्थ जानने से वंचित रहा। दुनिया की कुटिलताओं ने उसे उल्टे रास्ते पर डाल दिया। वह लिखता है :—

"औरत एक शराब है और सौन्दर्य एक झूठ। हम एक-दूसरे को कुछ भी नहीं जानते। पति-पत्नी बरसों तक एक-दूसरे के साथ रहते हुए भी एक-दूसरे से अपरिचित हैं।...दो दोस्त मिलते हैं पर हर बार नये रूप में। हम एक-दूसरे से दूर चले जा रहे हैं। मानवी प्रेम निरा धोखा है।...और जब मैं औरत को देखता हूं तो मुझे चारों ओर मौत ही मौत दिखाई देती है।"

मैंने आंखें खोलकर अम्मां की ओर देखा। अम्माँ रोते-रोते सो गईं थी। गाल आंसू से गीले थे। और बन्द आंखों की पलकों पर आँसू चमक रहे थे। क्या अम्मी मौत है? और क्या ममता भी कोई ऐसी ही

भयानक भावना है? शायद मोपासां ग़लती पर था। शायद उसे ऐसा लिखते समय अपनी ममता भरी माँ की याद नहीं आई थी। उसकी प्यारी लोरियां, उसकी नरम-नरम थपकियां,—जब वह बच्चों की तरह ऊं-ऊं कहकर बिल-बिला उठता था और उसकी छाती से लिपट जाता था...। मानवी प्रेम केवल धोखा है? शायद उन्हें अपनी माँ के वो चुम्बन भूल गये जब वयस्क होने पर भी उनका भारी सिर अपने बाजुओं में ले लेती थी और प्यार करती थी। जब वह ममता से अधीर हो जाती थी और उनके शहर से बाहर चले जाने के बाद भी शाम को उनकी राह देखा करती थी। उनकी हर भूल को बच्चों की भूल कहकर टाल देती थी और उनके अपराधों को भी भले काम माना करती थी। इस दुनिया में हम अकेले नहीं हैं। बल्कि हमारे साथ मां है। जिस अकेलेपन की शिकायत मोपासां को है और जो डर दुनिया की भीड़ और कोलाहल में भी हमारा पीछा नहीं छोड़ता वह मां की गोद में आते ही काफ़ूर हो जाता है। मां के प्रेम में एक ऐसी मोहकता और मिठास है जो उसके डर को मिटा देती है और उसको बच्चों का सा अलमस्त बना देती है।

सचमुच हम इस दुनियां में अकेले नहीं हैं। हमारे साथ हमारी मां है। सचमुच ऐसा ही है..........मगर.........

'गुटरगूं, गुटरगूं'—कुकड़ूं-कूं कुकड़ूं-कूं', कुकड़ों, कबूतरों, चिड़ियों ने प्रभाती दुलहन का स्वागत शुरू कर दिया था। उनके चहकने ने मुझे अधीर कर दिया। मैं उठकर बिस्तर पर बैठ गया। टांगें चारपाई के नीचे लटका दीं। और आंखें मलने लगा। इतने में आंगन से मां की आवाज़ आई:—

"बेटा वहीद उठो, महमूद आ गये।"

आंखें खोलकर देखा तो सचमुच...........मां आंगन में उगे हुए गुलाब के बूटे के पास मूढ़े पर बैठी थी और महमूद उसके पैरों पर

झुका हुआ था। मैं जल्दी से उठा। आंगन में हम दोनों भाई आलिंगन करते हुए मिले।

'इतने दिन कहां रहे?' मैंने महमूद से पूछा।

महमूद ने शरारत भरी आंखों से मेरी ओर देखा और एक आंख मीच ली। फिर गरदन मोड़कर गुलाब की बेल के लाल-लाल फूलों को ध्यान से देखने लगा, और बोला :—

"लगभग सात दिन मूसलाधार वर्षा होती रही। रास्ता बन्द रहा।" यह कहकर वह एक हाथ से मेरे हाथ को पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से हिलाने लगा।

मां सब्जी छील-काट रही थी और हम दोनों को देखती जाती थी। आंसुओं के उन दो समुद्रों में आनन्द की जल-परियां नाच रही थीं।

: ६ :

गोमां

नाम है गोमती, पंडितजी प्यार से गोमां कहा करते हैं। कहते हैं, मुझे उससे एक तरह का स्नेह है। सच यह है कि उससे प्यार करते हैं। उसके प्रेम पर गर्व करते हैं। उसके चाहने वालों में से हैं। मुझ से कई बार कह चुके हैं "देखो भई! मैं व्यर्थ बदनाम हो रहा हूं, लोग ताने देते हैं इस बेचारी को। लेकिन सच पूछो तो धर्म से कहता हूं—और तुम जानते हो, मुझे धर्म से बढ़कर और कोई चीज़ प्यारी नहीं—मुझे गोमती से ऐसा स्नेह है जिसमें वासना की गन्ध भी नहीं। लोग यों ही बदनाम करते हैं।"

"मेरा क्या है, अकेली जान है। कुछ कट गई, कुछ कट जायगी। मुझे तो इस बेचारी की चिन्ता है। अगर इसके पति को पता लग जाय तो क्या हो? तुम जानते हो, आदमी कितने सन्देहशील होते हैं। यद्यपि मेरा स्नेह पवित्र है—तुम जानते ही हो, सांच को आंच नहीं—फिर भी दुनियाँ का मुँह कौन बन्द करे? चलो, छोड़ो इन बातों को। लोग तो यूंही छेड़छाड़ किया करते हैं। हमारा मन शुद्ध है। लोग जो जी में आये कहा करें। आओ चाय पीयें।"

और फिर हम चाय पीने लगते।

पंडितजी बड़े प्रसिद्ध डाक्टर हैं। कस्बा और पास के गाँवों के पशु इनके पास चिकित्सा के लिये लाये जाते हैं। इनका पूरा नाम "पंडित बामदेव अग्निहोत्री आफ सलोत्री है।" मैंने इन्हें

प्रायः इसी तरह हस्ताक्षर करते देखा है। लोग इन्हें केवल पंडितजी कहकर पुकारते हैं। देखने में आप काफ़ी कुरूप व्यक्तियों में से हैं। और इन्हें अपनी कुरूपता की उतनी ही अनुभूति है जितनी रूपवानों को अपने रूप की होती है।

एक दिन दर्पण सामने रखकर मूंछों को तेल लगा रहे थे। अचानक बोल उठे "लाल हुसैन! तुम्हें पता है कंकरीट क्या होता है?"

मैंने उत्तर दिया "नहीं तो।"

"देखो हम तुम्हें बताते हैं। कंकरीट वह मसाला है जिससे परमेश्वर ने बीसवीं सदी के मनुष्य बनाये। यह बात वैज्ञानिकों ने बड़ी खोज के बाद पता लगाई है। उन्होंने इस मसाले को तैयार भी कर लिया है। मगर इससे वह इन्सान तैयार नहीं कर सके। अगर वह ऐसा कर सकें तो उनमें और परमेश्वर में क्या अन्तर रह जायगा? सच है ना?"

"ठीक कहते हैं आप।"

"हम तुम सब इस मसाले से बने हैं। अन्तर केवल इतना है कि ईश्वर ने आप लोगों को पहले बनाया और मुझे सब से अन्त में।"

"वह कैसे?"

"बड़ी सीधी बात है। देखो ना! जब ईश्वर सब लोगों को बना चुका तो बचा-खुचा मसाला पड़ा था। उसे देखकर चिन्ता में पड़ गया कि आखिर इसका क्या होगा? बहुत सोच-विचार के बाद उसने यह निश्चय किया कि इससे एक ऐसी प्रतिमा बनाई जाय जो सब से निराली हो, अपने सदृश आप हो, जिसकी सुन्दरता देख कर स्त्रियां बेहोश हो जायें, बच्चे माताओं की गोदियों में छुप जायें, पुरुषों के पेट में बल पड़ जायें, वे हंसते-हंसते पागल हो जायें। वही सौन्दर्य-प्रतिमा मैं हूं। देखो न,—नाक अन्दर धंसी हुई, चेचक के दाग, पके हुये होंठ अंजीर की तरह फटे हुए"—यह कह कर

आपने दर्पण को ज़ोर से मेज़ पर पटक दिया और अपने को गालियाँ देने लगे।"

फिर कुछ देर ठहर कर गुनगुनाने लगे : "इश्क़ तेरे में सनम, मैंने सनम,—बोल सुने, किस-किस के, किस-किस के !!"

आदमी की बुद्धि पर कैसे परदा पड़ता है। यह देखकर मैं आप ही हंसने लगा। फिर वह भी मेरे साथ हंसने लगे, हा-हा-हा।

गोमती सुन्दर है, लेकिन उसका सौन्दर्य अलजब्रे का फारमूला नहीं। कलाकार उसमें हज़ारों चित्र देख सकता है। उसके सैंकड़ों दोषों का वर्णन कर सकता है। यह होते हुए भी उसके रूप में कुछ ऐसी मोहकता है जो मन को बरबस मोह लेती है। मुझे उसकी आँखें—बड़ी-बड़ी काली आँखें, नागोरी गाय की तरह मस्त आँखें—बहुत अच्छी लगती हैं। और पण्डित जी को उसकी चिबुक और वह मीठी लोचदार आवाज़ बहुत अच्छी लगती है, जिसे सुनकर उनका दिल किसी अज्ञात अनिर्वचनीय आनन्द से कांपने लगता है। कस्बे के बड़े अफ़सर नायब तहसीलदार साहब भी उसे प्रायः ललचाई आँखों से देखा करते हैं। गोमती इन आँखों से प्रसन्न हो जाती है। अपने सौन्दर्य की अनुभूति उसे गर्वित कर देती है। वह अपने पति पर अनुशासन कर सकती है। उससे एक नये गहने की मांग कर सकती है। जब वह रूठ जाती है तो चाहती है कि उसका पति उसे मनाये। गोमती तीन बच्चों की मां है।

उसका पति एक ग़रीब दुकानदार है। कस्बे के छोटे से बाज़ार में एक सिरे पर छोटी सी दूकान है। नमक, आटा, तेल, खद्दर और गजरे आदि बेचता है। क़द ठिगना, मुरदनी सूरत और दब्बू—गोमती को उससे कैसे प्यार हो सकता है? यह बात मुझे आज तक समझ नहीं आई। उसके कपड़े प्रायः मैले रहते हैं। बेचारा हर समय दूकान पर बैठा रहता है। कस्बे की दूकानें शाम के छः बजे बन्द हो जाती हैं। किन्तु शाम को साढ़े आठ बजे सैर करके जब हम वापस आते हैं तो भी

गोमती के ग़रीब पति को हमने दुकान पर ही बैठा पाया है। और उस समय बत्ती के झिलमिलाते प्रकाश में उसका चेहरा विचित्र सा दिखाई देता है। वह तिब्बत के दलाई लामा की तरह समाधिस्थ सा बैठा होता है। वह क्या सोचता है? शायद वह सोचता ही नहीं। या शायद वह किसी ग्राहक की प्रतीक्षा करता है। ऐसे ग्राहक की, जो कभी आयगा ही नहीं। कभी उसकी दुकान के सामने से गुजरते हुए अचानक ठिठक कर रह जाता हूं और जब वह अपने घुटने समेटे, गरदन नीची किये बैठा होता है तो मुझे ऐसा लगता है कि कोई मन्त्र पढ़ रहा है, ज़मीन पर कुछ पढ़कर फूंक रहा है, जिससे यह ज़मीन अभी फट जायगी, जहाँ से एक दैत्य निकलेगा और भयङ्कर आवाज़ में बोलेगा : "क्या 'चाहिये"—मगर, ऐसा कभी नहीं होता। बल्कि वह बनिया ही बोल उठता है :—

"क्या चाहिये बाबू जी?"

और मैं घबराकर उत्तर देता हूँ, "तीन अण्डे मुरगी के।"

और फिर मुझे यह अनुभव होता है कि यह "अलिफ़ लैला" का कोई पात्र नहीं बल्कि एक ग़रीब दुकानदार है जो गोमती का पति है। उस गोमती का, जिसे नायब तहसीलदार और मैं मुग्ध आँखों से देखा करते हैं।—इस दुनिया में रूप है, मान नहीं, प्रेम है, मजनूं नहीं। शायद यही सोचकर उमर खैयाम को दुनिया के नश्वर होने का भास हुआ होगा।

पंडितजी दिन में दो बार आठ आना तोल की अफीम की चुस्की लगाते हैं। अफीम की यह मात्रा शायद ४-५ निराश ग्रेजुएटों को सदा के लिये सुख की नींद सुला सकती है। और हिन्दुस्तान की बढ़ती हुई जन-संख्या का विरोध कर सकती है। हिन्द के हितैषियों को अप्राकृतिक निरोध के उपायों का अवलम्बन छोड़कर इस ईश्वरीय वरदान का आश्रय लेना चाहिये। संभव है इसी उपाय से हमारे राष्ट्र की नौका मझधार में पार हो जाय। चुस्की लगाकर पंडितजी पेपर की बातें

करते हैं और फिर लाला से चौदह छटांक देशी शराब पीकर हवा के घोड़े पर सवार हो जाते हैं। उस समय दुनिया की राजनीति के घोड़ों की लगामें उनके हाथ में होती हैं। ऐसी हालत में जो दवा वह बतला दें उसका बीमारों पर अचूक प्रभाव पड़ता है। इसीलिये कितने ही किसान, जिनके मवेशियों को पंडितजी ने नया जीवन दिया है, पंडित जी के आयुष्य की प्रार्थनाएँ किया करते हैं। किसी पीर-साधु की समाध की तरह आपका दवाखाना लोगों के लिये तीर्थ-स्थान बन गया है। श्रद्धालु लोग दूध, मक्खन, फल लेकर वहां बड़ी भक्ति से आते हैं। पंडितजी भी साधु स्वभाव के हैं। जो भेंट श्रद्धा से दी जाय उसे क्योंकर स्वीकार न करें? बेचारे अकेले हैं। क्या खायें, क्या न खायें? आखिर, यह होता है कि दूध, मक्खन, पनीर और फलों का बड़ा भाग गोमां के घर पहुंचा दिया जाता है। वैसे भी इन्हें गोमती की लड़कियों, रानी और विमला, से बहुत प्रेम है। ये चीज़ें बच्चों के लिये भेजी जाती हैं। और शायद इसीलिये स्वीकार भी कर ली जाती हैं। रानी बड़ी चंचल और तेज़ लड़की है। पंडितजी से हर रोज़ किसी न किसी चीज की मांग कर लेती है। वह रास्ते में गोमती के घर से रानी या विमला को उठाकर सैर के लिये ले जाते हैं और शाम को एक ही खाट पर बैठकर गोमा से गपशप लड़ाते हैं। उन दोनों को इस तरह बैठे देखकर 'सौन्दर्य और पिशाच' के प्रसिद्ध चित्र का स्मरण हो आता है। गोमां की नशीली आंखें पंडितजी के मरुभूमि समान गालों पर दया के बादल बनकर बरसती हैं। वह अपने आप को उन आंखों की मादकता में खो देते हैं और प्रायः बिल्कुल खोये से झूमते हुए शाम को घर आते हैं।

एक दिन की बात है। मैं अंगीठी के पास पांव फैलाये ऊँघ रहा था। मेंह बरस कर थम चुका था और बादल पश्चिम के क्षितिज पर लाल रंग के हो गये थे। जलती हुई लकड़ियां चटख-चटख कर मुझे लोरियाँ दे रही थीं। और शायद मैं इनकी लोरी सुनता-सुनता उनकी गोद में

गिर जाता अगर बाहर किन्हीं पैरों की आहट ने चौंका न दिया होता। मुड़कर देखता हूं कि पंडितजी कन्धे सिकोड़े और चेहरे को पुराने ओवर-कोट के उठे हुए कालरों में छुपाये खड़े हैं।

"क्या बात है पंडितजी?" मैंने पूछा।

कुछ जवाब नहीं मिला।

"चुप क्यों हो गये? क्या उदास हो?"

फिर वही चुप्पी बनी रही।

"कहीं वे-भाव की तो नहीं पड़ी, दोस्त?"

कोट के उल्टे हुए कालरों से एक खिलखिलाहट उठी। सिकुड़े हुए कन्धे सीधे हो गये और झुकी हुई गरदन ऊँची उठ गई। मैं चेहरा देखकर चकित रह गया। यह गोमां थी—हँस रही थी और हँसती हुई दोहरी होती जा रही थी।

मैं जल्दी से टांगें झाड़कर उठ खड़ा हुआ और अचरज भरी आंखों से उसकी ओर देखने लगा। थोड़ी देर बाद मैंने गोमां से पूछा:—

"आप यहाँ कैसे आईं? पंडितजी कहाँ हैं?"

"नाले में पड़े आपकी राह देख रहे हैं।"

मैंने घबराकर पूछा—"क्या हुआ उन्हें?"

"होना क्या था, ख़ाक" उसने तेजी से कहना शुरू किया "वह आपका दोस्त पंडितजी, पंडितजी! ...बदमाश कहीं का...... लुचा...मगर, नहीं यह सब मेरा ही दोष है।"

वह कुछ देर चुप-चाप सिर झुकाये खड़ी रही। फिर उसने सिर झुकाकर मेरी ओर देखा। बोली, भाई! मैं उसे कुछ और ही समझे हुए थी। दुनिया कुछ कहे मेरी दृष्टि में वह मेरा भाई था। मैंने उसके लिये पति की झिड़कियां सहीं, रिश्तेदारों के ताने सहे किन्तु उससे अपनों का सा व्यवहार किया। आज उसका नतीजा यह मिला कि उसने पकड़कर मेरा मुंह चूम लिया...मैं..." यह कहकर वह रोने लगी। इसी तरह रोते हुए उसने पंडितजी का ओवर-कोट उतार कर

मुझे दे दिया और सिसकियां भरती हुई चली गई।

पंडितजी धीमे-धीमे कह रहे थे। "और उस कम्बख्त ने मेरे बाल नोच डाले। मैं तो शराबी था, नशे में चूर था। मगर उसने मेरा कोई लिहाज नहीं किया। उसने मुझे गालियां दीं। मेरा ओवर-कोट उतार लिया और मुझे कान से पकड़कर नाले पर ले आई। बरसात हो रही थी। मेरा अंग २ दुख रहा था। उसने मेरी रत्ती भर परवाह नहीं की। आह! वह फूलों के टोकरे, दूध के कलसे, मक्खन के गोले बेकार गये।"

मैं उसकी दिलचस्प बातें सुन रहा था और खुश हो रहा था। मेरे कानों में के-सी-डे का रिकार्ड गूँज रहा था।

"दिल लगाने का नतीजा मिल गया
उनके कूचे में जो तू ऐ दिल गया
दिल लगाने का नतीजा मिल गया।"

पंडितजी की हालत अब खराब हो गई है। दिल प्रायः उदास रहता है। दोस्तों से उदासीनता, नौकरों से नाराज़गी, रोगियों से उपेक्षा; पंडितजी के मन में सभी से अलग रहने की इच्छा जाग गई है। सुलह की सब कोशिशें व्यर्थ हो गई हैं। दूध के कलसे लौटा दिये गये हैं। फूलों के टोकरे वापस कर दिये गये हैं। मक्खन के गोले उल्टे पांव वापस भेज दिये गये हैं। करें तो क्या करें। एक दिन पास के गांव का एक नम्बरदार नूरहसन अपनी सुन्दर गाभिन गाय ले आया। कहने लगा, "पंडितजी, इसे देखिए, शायद सर्दी लग गई है। बदन कांपता है। नथनों से रेशा जारी है। कभी-कभी खांसी भी आती है। कोई अच्छी दवा दे दो। अभी एक महीना हुआ, इसे खरीद कर लाया हूँ। आपका भला होगा।" पंडित जी जले-भुने उठे, जल्दी से एक शीशी उठा लाये। गाय का मुंह खोल कर, पीक चढ़ाकर दवा उँडेल दी। पिलाना था अग्योरा-मिक्चर पिला गये 'टिंकचर आयोडीन'। गाय ने रास्ते में ही प्राण दे दिये।

नूरहसन को सन्देह हुआ। थाने में रपट लिखा दी।

पंडितजी को तो स्वयं ही इस 'गौ-हत्या' का बहुत खेद था। पुलिस वालों ने भी तंग करना शुरू कर दिया। थाने वालों को दूसरों की भावनाओं से क्या लेना-देना? पंडितजी आप ही शरम से मरे जा रहे थे। पुलिस को हस्तक्षेप की आवश्यकता ही नहीं थी। गाय तो नूरहसन की मरी और हाथ धोकर पीछे पड़ गये थानेदार साहब! "इनके साथ हमारी देर से मित्रता थी। जब वह श्रीनगर में थे तो स्कूल के लड़कों ने पत्थर मार-मारकर इनकी भैंस को अधमरा कर दिया था। तब हमने उसकी मरहम-पट्टी की थी। आज वह रिश्वत के ३००) मांग रहा है। नहीं तो जेल में भेजने की धमकी दे रहा है।" यह कहकर पंडितजी मेरी ओर देखने लगे। मैंने आँखें नीची कर लीं और बूट की नोक से जमीन कुरेदने लगा। मानो तीन सौ रुपये वहीं गड़े हुए थे।

......और भला करता भी क्या? तीन सौ रुपये कहां से लाता? पंडितजी ने तो कभी फूटी पाई भी नहीं रखी थी। वेतन और ऊपर की आमदनी के अलावा सदा उधार मांग कर खाया करते थे। अधिक नहीं तो कम से कम साढ़े तीन-चार सौ रुपये उन्हें कस्बे के दुकानदारों का देना था। उनसे अब कुछ सहायता मिलने की आशा नहीं थी। मैं ग़रीब आदमी ठहरा। इधर-उधर से मांग तांग कर पचास रुपये इकट्ठे किये। मगर, यह तो आटे में नमक के बराबर भी न थे। थानेदार तीन सौ से एक पाई कम लेने को तैयार नहीं थे। यही मुश्किल का सामना था। कई दिन यों ही गुजर गये। आखिर एक दिन थानेदार साहब मेरे पास आये। कहने लगे "क्यों भाई! क्या सलाह है? चालान कर दूं। आखिर कब तक चुप बैठा रहूंगा? नूरहसन भी बिगड़ा हुआ है। कर्त्तव्य भी तो हमारा यही है कि चालान किया जाय।" मालूम होता था कि नूरहसन ने आज थानेदार की मुट्ठियां गरम की थीं।

कोई जवाब न पाकर थानेदार साहब उठ खड़े हुए। "अच्छा, तो चलता हूं। अगर आज शाम तक कुछ बन जाय तो अच्छा है। नहीं तो कल मामला मेरे हाथ से बाहर हो जायगा—कहकर वे चले गये।

पंडितजी को साथ लेकर मैं रात के बारह बजे तक लोगों के दरवाजों पर घूमा। किसी ने आशा न बंधाई। रात सारी जागते कटी। सुबह की देवी मैले-कुचैले बादलों की पोशाक पहन कर आई। रात को यह खबर कस्बे में आग की तरह फैल गई थी कि पंडितजी को कल गिरफ्तार कर लिया जायगा।

सुबह लोगों के दल आने शुरू हो गये। टोलियां बनाकर, दो-दो, चार-चार के गुट बनाकर लोग खड़े थे। कोई कुछ कहता, कोई कुछ। जितने मुंह उतनी बातें हो रही थीं।

घर के अन्दर बैठे पंडितजी चुपचाप, गुमसुम हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। जब चारों ओर से निराशा ने घेर लिया हो, अन्धेरे में आशा की कोई किरण दिखाई न देती हो, उस समय मन के अन्दर एक लाचारी की शान्ति छा जाती है। दिल में हर कठिनाई का सामना करने की क्षमता पैदा हो जाती है। पंडितजी तो स्वभाव से ही अलमस्त और निरीह-से व्यक्ति थे। जो होगा देखा जायगा, सोचकर धीरज से बैठ गये। बैठे-बैठे थानेदार साहब की राह देखने लगे। सोच रहे थे कि आयेगा तो दिल के उद्गार तो निकालूंगा।

अचानक किसी के भारी पैरों की आहट सुनाई दी और बाहर लोगों की 'चेमेगोइयां' भी अचानक बन्द हो गई। मैंने उठकर दरवाज़ा खोला। यह थानेदार साहब थे। अन्दर दाखिल हुए। इनके बाद पुलिस के तीन सिपाही और उनके पीछे कस्बे के बीस-पच्चीस लोग भी अन्दर आये। थानेदार ने एक उड़ती-सी नज़र से मेरी ओर देखा और—सब कुछ समझ गये। मैंने इन्हें अन्दर लेजा कर बड़ी नरमी से बात-चीत की, गिड़गिड़ाया। पण्डितजी ने उसके

: १० :

चित्रकार का प्रेम

धर्मशाला,

मेरी कमला, २० सितम्बर।

कितनी छोटी-सी बात थी। तुमने कहानी बना ली। मेरी नज़रों में तुम आज भी वही हो जो सुशीला के आने से पहले थीं, सौन्दर्य की साकार मूर्त्ति। मैं समझता हूं मेरे प्रेम में कोई अन्तर नहीं आया। वह पहले की तरह ही बेचैन है और उसमें तुम्हारी दूरी ने वृद्धि ही की है। जीवन के उन थोड़े से सुख भरे क्षणों को जो मैंने तुम्हारे पास बिताए हैं, मैं अपने जीवन की अमूल्य निधि समझता हूं। उन्हें भूल जाऊँ? यह कैसे हो सकता है? तुम्हें भुला देना—तुम, जो उन क्षणों का केन्द्र स्रोत हो कैसे सम्भव है ?

और फिर—सुशीला? मैं चकित हूँ तुमने सुशीला का नाम क्यों लिया? क्या यह सच है कि औरत ईर्ष्यावश बुद्धि और विवेक को खो बैठती है। आखिर इस ईर्ष्या का उपाय क्या है? तुमने मेरे प्रेम को भाबो (हरबंसकौर) से होने की क्यों नहीं कल्पना की? वह भी सुशीला की तरह मोटी है और उतनी ही मोटी बुद्धि की भी। और तुम्हारे होस्टल में वह जो सुन्दर यौवन आती है, क्या नाम है उसका?—नूरन—हां—हां वही नूरन—जिसे देखकर आदमी चग-ताई की तस्वीर भी भूल जाता है—तुमने उसका नाम क्यों न लिया? तुम जानती हो कलात्मक दृष्टि से मैं उसे कितना पसन्द करता हूँ? अगर तुम उसका ही नाम ले बैठतीं तो मुझे रंज न होता। बहाल

के शिरोमणि कवि चण्डीदास को एक धोबन से प्रेम था। मैं तो एक छोटा सा चित्रकार हूं जिसका अपराध यह है कि उसने दिल के परदे पर तुम्हारा चित्र खींच लिया है। अजन्ता के रङ्गीन चित्र कुछ मिट चुके हैं, कुछ मिट जायेंगे। मगर, मेरी मृत्यु ही शायद तुम्हारे चित्र को मेरे दिल से मिटा सके। 'शायद' इसलिये कि मृत्यु के बाद का मुझे कोई ज्ञान नहीं।

इस प्रेम प्रदर्शन के बाद तुम से पूछना चाहता हूं कि अगर मैंने सुशीला को खत लिख दिया तो क्या बुरा किया। किसी के पत्र का उत्तर देना भी क्या बुरा है? संभव है तुम्हारी कल्पना में ऐसा ही हो।

अगर सुशीला ने अपने पत्र के साथ अपना चित्र भी भेज दिया तो शायद उसका यह अभिप्राय कभी नहीं था कि तुम्हारे दिल में ईर्ष्या की आग भड़क उठे। शायद वह इतना ही चाहती थी कि मैं उसे याद रखूं। शायद उसे मुझ से केवल काल्पनिक प्रेम था। और, यह कोई इतनी बुरी भावना भी नहीं, जितनी तुम इसे समझती हो? शैले को ध्यान से पढ़ो। उसकी कविता प्रेम में कल्पनात्मकता का सुन्दर उदाहरण है। शैले की कविता इसी विशेषता के कारण अमर हुई है। शैले को ध्यान से पढ़ो—नहीं तो एम. ए. की परीक्षा में फेल हो जाओगी। प्रेम की परीक्षा तो अलग रही।

और क्या लिखूं? मैं जानता हूं कि यह पत्र पढ़ने के बाद तुम मुझ से रूठ जाओगी। मगर, मुझे तुम से वह अनोखा, असाधारण प्रेम है कि मैं तुम्हारे रूठ जाने की रत्ती भर भी परवाह नहीं कर सकता। उमर खय्याम के बाद अगर कोई दूसरा सौन्दर्य का उपासक पैदा हुआ है तो वह मैं हूं। अच्छा होगा कि मुझ से रुठने की तैयारी न करो। सब से अच्छा तो यह है कि अपने दिल में ईर्ष्या की जलन को जगह न दो। मैं तुम्हें मनाऊँगा भी नहीं, और तुम व्यर्थ ही अपना दिल जलाओगी।

मैं यहां झील पर मछली का शिकार करके और लम्बी-लम्बी सैर

करके अपने दिन गुज़ार रहा हूं। मेरा स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है। मगर, मैं उस समय तक तुम्हारे पास मसूरी आने का विचार भी नहीं कर सकता जब तक पूरे तौर पर स्वस्थ न हो जाऊँ।

नूरन का चित्र लगभग पूरा हो गया है। दुख है कि डाक में यह चित्र तुम्हें नहीं भेज सकता। अन्यथा तुम्हारी आलोचना से भी लाभ उठा लेता। इसके बाद मैं बग्गी का चित्र शुरु कर दूंगा। बग्गी कौन है? इस दिलचस्प व्यक्ति के संबन्ध में मैं अगले पत्र में लिखूंगा। अभी इतना लिखकर ही समाप्त करता हूँ कि बग्गी एक औरत है।

तुम्हारा
श्यामसुन्दर

धर्मशाला
१५ अक्टूबर

मेरी मूर्ख कमला,

कहते हैं सौन्दर्य का बुद्धि से स्वाभाविक वैर है। इसलिये मैंने तुम्हें मूर्ख लिखा। यों तो तुम कहने को एम० ए० में पढ़ती हो, किन्तु इस बात से तुम्हारी बुद्धि का कोई संबन्ध नहीं। यह तो हमारी शिक्षा-पद्धति का दोष है। नहीं तो यह संभव नहीं था कि तुम जैसी सुन्दर लड़कियां कालेजों में लड़कों के साथ बैठकर पढ़तीं और मार्शल व मार्क्स के सामाजिक व आर्थिक सिद्धान्तों की यूं मूर्खता-पूर्ण ढंग से आलोचना करतीं।

ईश्वर के लिये इन आलोचनाओं को छोड़ दो। इनमें क्या पड़ा है? आज तक कोई औरत अर्थशास्त्र की पंडित नहीं बन सकी। ये कड़ी बातें कठोर लेखकों के लिये ही रहने दो। इन व्यर्थ की उलझनों में फंसकर तुम्हारी चपलता, तुम्हारा भोलापन काफ़ूर हो जायेगा। और इस समय दुनिया को इन्हीं चीज़ों की बड़ी ज़रूरत है। ये सब दैवी वरदान तुम्हारे लिये बनाये गये हैं न कि तुम उनके लिये। तुम को

कम से कम मेरी भावनाओं का तो मान करना चाहिये। मैं चित्रकार हूं, मौन सौन्दर्य का पुजारी हूं। किन्तु सौन्दर्य दूसरे का मोहताज हो, यह मुझे सह्य नहीं है। शैले को पढ़ो। शैले अपनी कविता के कुछ पद्यों में दुनिया का सबसे बड़ा कवि मालूम होता है। आज मूर्ख गाडविन को कौन पूछता है? उसका नाम केवल शैले के नाम से जीवित है। वह शैले का उस्ताद था। गाडविन के पास दो चीज़ें थीं—एक उसका कवि-हृदय.........दूसरी उसकी लड़की 'मेरी'। शैले ने उसकी लड़की मेरी को पसन्द कर लिया। इसी में उसकी विशेषता थी। तुम्हारे सामने दो चीजें हैं – एक ओर मैं, मेरा कवि-हृदय और दूसरी ओर है प्रेम, वह प्रेम, जो निराशा और पराजय को नहीं जानता और जो इन उलझनों से अपरिचित है।

मैंने यग्गी का चित्र बनाना शुरु कर दिया है। यग्गी एक ग्वालन है। बहुत सुन्दर और निपट गंवार। कल मैंने झील के किनारे बैठकर उसे तुम्हारा ख़त पढ़कर समझाया और मैं यह देखकर बड़ा हैरान हुआ कि उसे स्त्रियों के अधिकारों की बिल्कुल परवाह नहीं। और ना वह उसे तुम्हारी तरह औरतों का 'मेग्ना कार्टा' (अधिकार-पत्र) ही समझती है। वह मुझ से शादी करना चाहती है। वह चाहती है कि उसके नौ-दस बच्चे हों—मूर्ख लड़की! हाँ—उसके बाल बहुत सुन्दर हैं। सोने की पतली तारों की तरह नरम—कोमल—और आपस में इस तरह उलझे हुए कि जैसे डूबते हुए सूरज की किरणें इन कुन्तलों में आकर बन्द हो गई हैं। सन्ध्या समय जब मैं बांसुरी हाथ में लिये झील के किनारे बैठता हूँ और जब आकाश की परियाँ झील के नीले पानी से खेलती हैं उस समय वह सुन्दर ग्वालन एक नन्हा-सा भेड़ का बच्चा गोद में लिये मन्द स्वरों में गाती है:

मैंनू दस खां नी माहिये
कदों घर आवसी माहिया

लेसी गले नाल ला माहिया
मैंनू दस खां नी माहिये

वग्गी के स्वर में लोच है और दर्द भी, और फिर असीम मिठास भी। मैंने उससे पूछा : "वग्गी तुमने कौन से संगीत-स्कूल में गाना सीखा है ?" वह खिलखिला कर हंस पड़ी। कहने लगी 'संगीत-स्कूल' क्या होता है ? मैंने कहा "जहाँ गाना सिखाया जाता है।" वह बोली "जाने, तुम क्या कह रहे हो, आगे सुनो :—

असमानीं उड्डी आ माहिया
मेरा तेरे उत्ते दिल माहिया।
हुन आ हुन आ माहिया
गले नाल ला—नाल ला माहिया॥

कितना मोहक गाना था ! जादू भरा था उसमें। ऐसा मालूम होता था कि पानी का हर कण और पानी पर झुकी हुई टहनी का हर पत्ता झुककर गा रहा था :

मैंनूं दस खां नी माहिये
मैंनूं दस खां नी माहिये

कृष्णजी की वन्शी शायद इन्हीं ग्वालों में गूंजी थी और राधा जी भी शायद ऐसी ग्वालन ही होंगी।

मक्खन भाई परसों लाहौर के लिये चल पड़े हैं। उन्हें एफ०ए० की परीक्षा में बैठना है। वह मसूरी में ज़रूर तुम से मिलेंगे। नूरन का चित्र उनके साथ भेजा है। संभाल कर रखना। फ़िरोज़ भाई लाहौर के टेनिस टूर्नामेंट में खेल रहे हैं या मसूरी पहुंच गये हैं ?

तुम्हारा—
श्यामसुन्दर

धर्मशाला
१२ अक्टूबर

कमला,

मालूम होता है कि यह बीमारी अभी मेरा पीछा नहीं छोड़ेगी। दौरा पिछले कुछ दिनों से फिर शुरू हो गया है। मैं समझता था कि बीमार का हाल अच्छा है। कुछ दिनों में स्वास्थ्य लाभ कर तुम्हारे पास पहुँच जायगा। मगर, शायद भाग्य में कुछ और ही लिखा है।

अच्छा, तो कालेज खुल गये हैं; यह तुमने नई बात बताई। नहीं तो मुझ से गंवार को कब इसका पता लगता ? मैंने एक महीने की छुट्टी का प्रार्थना-पत्र कालेज में भेज दिया है। फ़िरोज़ के पत्र से मालूम होता है कि अब तुम्हारी और सुशीला की गहरी छनती है। क्लास-रूम में भी दोनों सहेलियां एक साथ बैठती हैं और रिफ्रेश-मेंट-रूम में भी साथ साथ-जाना होता है हाथ में हाथ डाल कर। मैं कहता था न कि सुशीला अच्छी लड़की है। यद्यपि इसकी नाक बहुत छोटी है किन्तु इसका दिल इतना बड़ा है कि उसमें एक साथ चार प्रेमी और लगभग इतनी ही सहेलियां समा सकती हैं। मैं इस मिलन पर बहुत प्रसन्न हूं, और चाहता हूँ कि तुम भी मेरे और बग्गी के सम्बन्ध को दार्शनिक दृष्टि से देख सको। नूरन तुम्हें पसन्द आई है, किन्तु नूरन किसे पसन्द नहीं ? सैयद साहब ने भी अपने पत्र में शाबाशी के लड्डू भेजे हैं। लिखते हैं कि "कालेज के सालाना कला-प्रदर्शन में तुम्हारा 'नूरन' का चित्र भी प्रदर्शित किया जायगा। शतशः धन्यवाद। किन्तु, मैं यह जानने को उत्सुक हूं कि खुद नूरन का अपने चित्र के बारे में क्या विचार है ? तुमने यह चित्र तो उसे दिखाया होगा ?

मैंने शुरू-शुरू में बग्गी के चित्र की हल्की-सी रूप-रेखा तैयार करनी चाही थी। मगर, मुझे उसमें मनचाही सफलता न मिली।

सच तो यह है कि मेरे हाथ इसके चित्र पर जमते ही नहीं। पता नहीं क्यों? ज्यों-ज्यों बग्गी को देखता हूं मुझे उसके बारे में नई नई बातें मालूम होती हैं। वह एक ऐसा हीरा है जिसके हर कोने से नई झलक निकलती है। मैं जब तक उसके दिल की विविध भावनाओं की थाह न पा लूं उसका चित्र बनाना कैसे शुरू कर सकता हूं? संभव है तुम्हें 'मोनालिज़ा' के चित्र की बात याद आ जाय। चित्रकार ने 'मोना' के दिल की गहराई को पा लिया था, नहीं तो यह संभव ही नहीं था कि वह दुनिया को कला की आदर्श-प्रतिमा दे सकता। चित्रकार और उसकी प्रतिभा में एक नाज़ुक-सा सम्बन्ध होता है। उसे समझे बिना कोई चित्रकार सच्चा चित्र नहीं बना सकता। तुमने अपने चरित्र को हमेशा मुझ से छुपाया है। शायद इसीलिये मैं अभी तक तुम्हारा चित्र नहीं बना सका। तुम्हारा व्यक्तित्व छुई-मुई का सा है जो हाथ लगाने से बन्द हो जाता है—इस पूर्णता से कि फिर तुम्हारे दिल की तूफ़ानी भावनाओं को कोई अनुमान से भी नहीं देख सकता। और - और—बग्गी मानो गुलाब की एक कली है—शर्म से सिमटी हुई, और पत्तों में छुपी हुई—नरम, नाज़ुक! मगर, वह खुल रही है। धीरे-धीरे हर रोज़ दो नई पत्तियां खिल जाती हैं। और अपनी रंगीनी से दिल को लुभा जाती हैं। एक दिन यह कली फूल की तरह खिल जायगी। फिर मैं शायद उसका चित्र बना सकूं, अभी नहीं।

लाहौर में तो गर्मी होगी। यहां अब सर्दी हो गई है। मैं तो ऊनी कपड़े पहनता हूं और चाय पीता हूं। अगले महीने शायद बर्फ गिरनी भी शुरू हो जायगी। झील का पानी ठंडा होगा। शाम को मछलियां पकड़ने की उमंग शाम बैठी जायगी और चौकीदार साहबदीन से भूत-प्रेतों की कहानियां सुनने मन बांधेगी।

अगली डाक में शान्ति निकेतन की एक पुस्तक भेज दूंगा।

श्यामसुन्दर

धर्मशाला
८ नवम्बर

फ़िरोज़ भाई,

आज बग्गी की मृत्यु हुए सात दिन हो गये। मैं सोचता हूँ, मेरा क्या बनेगा? और यह दुनिया मेरे किस काम आयेगी? मैं हर चीज़ के रूप-रंग को देखने का अभ्यासी हूँ। किन्तु आज मैं इस गहरी सचाई को अनुभव कर रहा हूं कि संसार में सच्चा आनन्द प्रत्यक्ष वस्तु की प्राप्ति में नहीं बल्कि कल्पनाओं और भावनाओं में है। प्रकृति के जो रम्य दृश्य एक सप्ताह पहले मेरी आत्मा में आनन्द की लहर दौड़ा देते थे, अब मुझे उदासी की गहरी गुफा में अकेला छोड़ देते हैं। परसों से फिर बरफ़ पड़नी शुरू है। और मैं सामने के बन्द किवाड़ों में से बरफ़ की फुहार को देख सकता हूं, जो चुपचाप किसी दुखित हृदय के आंसुओं की तरह ज़मीन पर गिर रही है। सारी दुनिया इस सूनी चादर में लिपटी हुई है। पक्षी भी मौन हैं। हवा भी मौन है और चारों ओर मृत्यु की शांति छाई है। मगर, मेरे दिल में प्रलय की आंधी उठ रही है। आज से ठीक दस दिन पहले इसी तरह बरफ़ीली हवायें शुरू हुई थीं, लेकिन आज और उस दिन में कितना अन्तर है!

मैं उस दिन झील में एक हल्की-सी नाव को खे रहा था। आकाश बिल्कुल साफ़ और झील के पानी की तरह नीला था। मैं नाव चला रहा था और मन की उमंग में एक अर्थहीन सा पहाड़ी तराना गा रहा था। झील के उस पार बग्गी रेवड़ चरा रही थी। मुझे उस के कन्धों पर रखी हुई लाठी और सुनहरी बालों की लटें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं।

इतने में ज़ोर की आंधी चलने लगी। आकाश पर काले-काले बादल उठे। हवा में वेग और ठंडक समा गई। झील का पानी लहरें मारने लगा। मैंने भी नाव को तेज़ी से चलाना शुरू कर दिया। जल्दी से नाव को पार लगाने की कोशिश की। किनारे पर पहुंचते ही तड़ातड़ ओले बरसने शुरू हो गये। किश्ती को किनारे पर घसीट कर एक

झाड़ी से बांधा और दूर एक घने वृक्ष को देखकर उसके नीचे जाने को तेज़ी से भागने लगा।

ओले पड़ते गये और मैं भागता गया। बादलों की गरज, बिजली की कड़क और हवा के तूफ़ानी फर्राटे मेरे होश-हवास को गुम किये देते थे। आखिर वह वृक्ष पास आगया। मैं उस के तने से पीठ लगाकर बैठ गया। आंखें बन्द कर लीं और दिल पर हाथ रखा। बेचारा कितने ज़ोर से धक्-धक् कर रहा था। मालूम होता था कि अभी फूट जायगा। कुछ देर बाद सांस की धोंकनी ढीली पड़ी, दिल ठिकाने आया, होश आई। तब जाकर कहीं आंखें खुलीं और मैंने इधर-उधर देखना शुरू किया।

यह बहुत बड़ा सनोवर का वृक्ष था। केवल तने की लपेट ही साठ-सत्तर फीट होगी। ऊँचा भी यह इतना था कि ओलों के गिरने की आवाज़ घने पत्तों से छन कर मेरे कानों तक जब पहुंचती थी तो यह लगता था कि कहीं दूर स्थान पर ओले गिर रहे हैं। पत्तों में से बच कर एक भी ओला नीचे नहीं गिर पाता था। चारों ओर प्रलय मची थी। लेकिन यह तीन-चार सौ वर्ष का बूढ़ा वृक्ष तूफ़ानी समुद्र में प्रशान्त टापू की तरह स्थिर खड़ा था। प्रकृति ने एक ही झांकी में संसार के दोनों रूप दिखा दिये।

वहीं कुछ सोचता हुआ मैं अपने भीगे हुए कोट को निचोड़ रहा था कि कहीं पास से बकरी के बच्चे की "मैं—मैं" सुनाई दी। वृक्ष के तने के दूसरी ओर जाकर देखता हूँ कि तने में एक बड़ी खोखर है जिसमें बकरी चुप-चाप गुम-सुम [illegible] के सहारे खड़ी है। भेड़ बकरियों का बेचारा उसके पास ही [illegible] में बैठा है।

मुझे देख कर बकरी एकदम और डरी। उसकी आंखों में एक अजीब सी चमक दौड़ गई। फिर, धीरे से उसने अपना सिर नीचा कर लिया।

मैंने एक बकरी के बच्चे को धीरे से गोद में उठा लिया। सर्दी

में मुझे उसकी नरम-नरम पशम के घने बाल बहुत भले मालूम हुए। इसके सिर पर हाथ फेरते हुए मैंने बग्गी से कहा:

"दो दिन से मैंने तुम्हें नहीं देखा बग्गी?"

वह आंखें झुकाये हुए चुप खड़ी रही।

मैं बकरी के बच्चे से खेलता रहा।

अब चारों ओर चुप्पी छा गई थी। ओले बरसने बन्द हो गये थे।

आख़िर सदियों के लम्बे समय के बाद मैंने धीमे से कहा: यहाँ तो बहुत सर्दी है। क्या मैं खोख के अन्दर आ सकता हूँ?"

कोई उत्तर न पाकर मैं खोख के अन्दर आगया।

"ओ—हो, अच्छी भली खोख है। पता नहीं, इस वृक्ष की उम्र क्या होगी बग्गी?...शायद दो-तीन सौ साल होगी। क्यों बग्गी? ठीक है ना? कितनी अच्छी जगह है! बोलती क्यों नहीं?" मैं आप ही आप ये सब बातें कहता गया।

बग्गी खिलखिलाकर हंस पड़ी। आ—ह, वह मनमोहक हंसी! उसके मोतियों की तरह सुन्दर दांत चमक रहे थे। और उसका चेहरा उस पहाड़ी गुलाब के फूल की तरह खिल पड़ा जिसके बीच बरफ का गोला रख दिया गया हो।

मैंने बकरी के मेमने को ज़मीन पर छोड़ते हुए पूछा "क्यों हंस रही हो बग्गी?"

उसने कोई उत्तर न दिया। वह हंस रही थी और कांप रही थी। उसके हाथ नंगे थे और उसकी कमीज़ कई जगहों से फटी हुई थी।

"तुम्हें सर्दी लग जायगी बग्गी! लो, यह कोट पहन् लो।"

उसने हंसना बन्द कर दिया और चुपचाप खड़ी हो गई। मैं उसे कोट पहनाने लगा। जब कोट पहना चुका तो उसने धीमे से अपने बाज़ू मेरे गले में डाल दिये और अपना सिर मेरी छाती पर रख दिया और सिसकियां लेकर रोने लगी।

मैं उसकी हंसी को न समझ सका था लेकिन उसके रोने को समझ गया। प्रेम के दर्द भरे गीत ने अचानक दिल के सूने अंधेरे को प्रकाश में बदल दिया। मैं बर्गी के चंचल,लहराते बालों से खेलने लगा। वह सिसकियाँ लेकर रो रही थी और अपने फटे आंचल से आंसू पोंछती जा रही थी। धीरे-धीरे उसकी सिसकियां कम होती गईं।

ओले पड़ने बन्द हो चुके थे, और अब बरफ़ पड़नी शुरू हो गई थी। चारों ओर धुन्ध और अंधेरा छा रहा था। शायद इस इतनी बड़ी दुनिया में अब वही वटवृक्ष का घना खोंप सुरक्षित स्थान था और इसी वृक्ष के नीचे खड़े दो व्यक्ति, जो धड़कते हुए दिल बाहर के तूफान से सुरक्षा पाने की याचना कर रहे थे।

और—अगर इस खोंप में खड़े-खड़े प्रेम के इन दो पतंगों की उमरें बीत जातीं तो क्या ही अच्छा होता!

इसके दो दिन बाद वह मर गई। उसके जंगली पिता ने अपने हाथों उसे मार डाला।

कारण? कारण यह कि वह एक रात घर से बाहर एक अजनबी के साथ गई थी। जङ्गल के कानून के अनुसार उसके पिता ने उचित ही किया। उसने बर्गी की लाश को घसीट कर झील के किनारे बरफ़ पर फेंक दिया। मैंने उसे अपनी आँखों बरफ़ के सफ़ेद बिस्तर पर सोये हुए देखा। कितनी गहरी नींद थी! उसके बाल खुले हुए थे। सुनहरी बाल उलझे हुए थे। चेहरा कुमुदनी की पंखड़ियों की तरह सफ़ेद था। सङ्गमरमर की तरह कोमल गरदन में एक गहरा घाव साफ़ दिखाई देता था। मैं उसे इस तरह पड़ा देखकर पागल हो गया था। मैंने आगे बढ़कर, झुककर उसके गहरे घाव को चूम लिया। किन्तु वह तो एक सुन्दर चित्रकार की काल्पनिक कहानी थी। वह उस एक कुन्दन से [illegible] की मूर्ति में प्राण डालना चाहता था।

[illegible] !!

तुम कहते हो कि [illegible] नहीं। [illegible]

पता है फ़िरोज़ ! मैं इन सात दिनों में कितना रोया हूं ! क्या मेरे आँसू कमला के आंसुओं की सजा हैं ? जाने दो फ़िरोज़ भाई ! ये आँसू किस काम के हैं ? व्यर्थ—बिल्कुल व्यर्थ।

पता नहीं, ये आँसू कब बन्द होंगे। पता नहीं यह हिमपात कब बन्द होगा ? मैं कल फिर झील के उस पार जाऊँगा, जहाँ वट का घना वृक्ष है, जिसके तने में एक बड़ी खोख है। झील के किनारे मेरी नाव मेरी प्रतीक्षा कर रही है और झील के उस पार मेरी बग्गी।

यह कौन गा रहा है, सुनते हो ? कितना मीठा दर्द भरा गीत है:—

हुन आ—हुन आ—माहिया
गले नाल ला—नाल ला माहिया
मैनूं.........

रोजनामचा पुलिस—थाना धर्मशाला, ८ नवम्बर।

आज डाक-बंगला के चौकीदार साहबदीन की रिपोर्ट पर कालेराम सिपाही को झील पर भेजा गया। एक टूटी हुई नाव मिली और पानी में तैरती हुई एक लाश। चौकीदार का बयान है कि उसने कल शाम मरने वाले को अन्तिम बार तब देखा जब वह नंगे सिर झील की ओर भागता हुआ जा रहा था। चौकीदार ने कई बार आवाज़ें दीं, मगर उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह रात को वापस बंगले पर नहीं आया।

मृत व्यक्ति के शरीर पर कोई घाव नहीं। मृत्यु शायद आत्महत्या से या डूब जाने से हुई। मृत-व्यक्ति का नाम श्यामसुन्दर था। वह लाहौर का रहने वाला था। यहां सैर और स्वास्थ्य के लिये आया था। लाश पोस्ट मार्टम के लिये सिविल सर्जन साहब को भेज दी गई है। तहकीक़ात जारी है—

हस्ताक्षर
हक़नवाज खां सदर मुहर्रर,
थाना चौकी, धर्मशाला।

: ११ :

पीलिया

पीलिया स्वयं एक रोग नहीं, यह भी डाक्टरों की एक कल्पना है—उसी तरह जिस तरह वैज्ञानिकों की यह कल्पना कि चांद स्वयं प्रकाशमान नहीं। सच यह है कि इस प्रकार की कल्पनाओं से डाक्टर और वैज्ञानिक साधारण लोगों से अलग पहचाने जाते हैं। अन्यथा यह कैसे सम्भव है कि हम में से कोई चांद की ठंडी चांदनी और पीलिया जैसे कष्ट-दायक रोग से इन्कार कर सके। सम्भव है मेरी बात पर सर्वथा विश्वास न किया जाय और उसे केवल एक अनर्गल प्रलाप कहकर छोड़ दिया जाय।

कुछ भी हो, विश्वास कीजिये पीलिया एक रोग है। इस कहानी के शुरू होने से पहले मुझे यह रोग था। जिस तरह सावन के अन्धे को चारों ओर हरा ही हरा दिखाई देता है उसी तरह इस रोग से ग्रस्त आदमी को चारों ओर पीला ही पीला दिखाई देता है। ऐसा मालूम होता है जैसे किसी पीले हाथ ने सारी दुनिया पर हल्दी उंडेल दी हो। इसके बाद रोगी उस अवस्था पर पहुंच जाता है जहां उसकी दुई मिट जाती है और मुझ जैसा एकाकी व्यक्ति निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है।

इस रोग से ही इस छोटी-सी कहानी का प्रारम्भ हुआ। अगर मैं बीमार न पड़ता तो श्यामा मेरी सेवा को न आती। श्यामा के सम्बन्ध में मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि वह मेरी प्रेमिका है—अर्थात् मैं

उससे प्रेम करता हूं और वह अपने पति से नफ़रत करती है। उसका पति चकवाल में ईंटों के एक भट्टे पर नौकर है। वह २० रुपया वेतन पाता है और भट्टे पर काम करने वाले मज़दूरों की हाजिरी लगाता है, और कभी-कभी अपनी सुन्दर पत्नी को पत्र लिख देता है। पत्र में प्रायः सैफुलमुल्क शाह बहराम और हुस्नबानू की सुन्दर कविता लिखी होती है। श्यामा उन पत्रों को मुझ से पढ़वाया करती है। उस समय उसका चेहरा शर्म से लाल हो जाता है। बेचारी अनपढ़ है। जब मैं उस कविता की व्याख्या अपने शरकानी अन्दाज से करता हूँ तो बेचारी घबरा जाती है, शरमाती है और सचमुच बड़ी प्यारी मालूम होती है। उसकी भोली आँखों में विशेष चमक आ जाती है, होंठ कांपते हैं और तब मुझे अचानक उसकी मधुर-मधुर सुरीली आवाज़ सुनाई देती है, "आगे क्यों नहीं पढ़ते ?" और...मैं भला खत पढ़ते-पढ़ते उसके चेहरे की ओर क्यों देखने लग गया था ? प्रेम ? नहीं। ईर्ष्या ? हे ईश्वर ! मुझे प्रेम है या पीलिया ?

एक दिन—वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है—मैं बिस्तर पर करवट के बल लेटा हुआ रेशम के कीड़ों से खेल रहा था। हमारे पड़ोसी ने रेशम के कीड़े पाले थे। वह इनके कोये बेचता था। बड़ा अच्छा व्यापार है यह। पिछले साल उसने इससे दो महीने में ही कोये बेचकर तीन सौ रुपये कमाये थे। मेरा छोटा भाई उससे मांग कर ८-१० कोये ले आया था। उन कोयों में से पांच फूट गये थे। और उनमें से रेशम के कीड़े निकल आये थे। ये सफेद और पीले कीड़े कोयों से निकल कर न कुछ खाते हैं न पीते हैं। केवल सात दिन जीवित रहते हैं। इसी बीच नर और मादा लैंगिक सम्बन्ध बना लेते हैं। उसके बाद नर मर जाता है। फिर मादा अन्डे देती है, जो पीले, छोटे और गोल-गोल होते हैं। इसके बाद मादा भी मर जाती है। बस, यही सात दिन का उनका जीवन है और यही उनके जीवन का कार्यक्रम है।

मैं इन रेशम के कीड़ों से खेल रहा था। इनमें चार नर थे, एक मादा थी। मादा चुपचाप बैठी नर कीड़ों की ओर लुभावनी आँखों से देख रही थी। वह किसे पसन्द करेगी ? किसका चुनाव करेगी ? वह कौन भाग्यशाली होगा जो इस सुन्दरी का प्रेमी होगा ? आप सच जानिये, बड़ी कठिन समस्या थी। नर कीड़े दीवाने भवरों की तरह उड़-उड़कर उसकी ओर जाते थे। पतंगे की तरह उसके चारों ओर घूमते थे। कभी-कभी वह आपस में गुथ भी जाते थे। मैं बड़ी कठिनाई से उन्हें अलग करता था। फिर वह कुछ देर चुप बैठते थे—बिल्कुल चुप। किन्तु जल्दी ही सुन्दरी मादा उन्हें अपनी ओर खींच लेती थी। वे फिर फड़फड़ाने लगते। कभी एक, कभी दूसरा उड़कर मादा के पास जाता और अपने मुँह को उसके मुँह के पास ले जाकर प्रेम-प्रदर्शित करता। वह मादा भी कभी मुस्कराती कभी बेपरवाही से मुँह मोड़ कर दूर हो जाती। नर बेचारा अपना सा मुँह लेकर रह जाता...स्त्री का चरित्र इतना दो-मुखा क्यों है ? एक ही नज़र से वह घाव भी पैदा करती है और उस पर मरहम भी लगाती है। अशान्त भी करती है शान्ति भी पहुँचाती है।

यही सोचते-सोचते मैंने आँखें बन्द कर लीं। किसी के पैरों की हल्की-सी आहट सुनाई दी। कोई मेरे सिरहाने आकर खड़ा हो गया।

मैंने आंखें खोले बिना कहा, "मां ! दवा लाई हो ?"

"नहीं मैं हूँ, श्यामा।"

अगर मेरे पेट पर रखी हुई पानी की बोतल फट जाती तो भी मुझे इतना आश्चर्य न होता जितना उस समय श्यामा के आने पर हुआ। जब मैं बीमार हुआ था—तीन महीने से—वह एक बार भी मुझे पूछने नहीं आई थी। शायद उसके पति का चकवाल से कोई पत्र नहीं आया था।

मैंने यों ही ज़रा नाटकीय ढङ्ग से कहा, "श्यामा ! तुम ?"

उसने देहाती ढङ्ग से उत्तर दिया, "हां—ये लो तुम्हारे लिये कुछ

खुमानियां लाई हूं। खूब पकी है।" यह कहकर उसने रुमाल खोल कर सब खुमानियां मेरे बिस्तर पर बखेर दीं।

इस रोग में मुझे दो चीज़ें बहुत याद आती थीं—एक खुमानी दूसरी श्यामा। जब दोनों एक साथ मिल जायं तो मेरे सौभाग्य का क्या ठिकाना? आज मैं सचमुच भाग्यशाली था। मैं धीमे से उठकर बैठ गया और अख़बार का वह पृष्ठ जिस पर रेशम के कीड़े रखे थे, दूर हटा कर बोला, "आओ, बैठो।"

वह पैताने की ओर बैठती हुई बोली, "क्या हाल है?"

"अच्छा है।"

कुछ देर हम दोनों चुपचाप बैठे रहे। मुझे मालूम नहीं था कि मुझे क्या कहना चाहिए? दिल में भावनाओं का ज्वार-भाटा उठ आया था। मैं अपने दुःख और क्रोध को बाहर निकालना चाहता था किन्तु अचानक ज़बान गूंगी हो गई। दिल में उपालंभों का अंबार लगा था। मगर होंठ मानो किसी ने सी दिये थे। हृदय में बेचैनी का तूफ़ान था किन्तु आंखें चेहरे को देखकर मस्त हो गईं—आख़िर सोच सोचकर मैंने कहा "चकवाल से कोई पत्र आया?"

"नहीं तो, तुम तो बहुत ही दुबले हो गये हो। तुम्हारी आंखें इतनी पीली क्यों हैं? मुझे दुःख है मैं इससे पहले तुम्हारे पास न आई। मां की तबियत ख़राब थी। खुमानी क्यों नहीं खाते? खाओ।"

मैंने कृतज्ञता भरी दृष्टि से उसे देखा। एक खुमानी उठाई और मुख में डालकर दिल को भला-बुरा कहने लगा। "अरे मियां, कुछ तो कहो, अगर शिकायत करने का साहस नहीं होता तो प्रेम-प्रदर्शन ही करो; इस कृतज्ञ दृष्टि से क्या होगा? बात करना सीखो, गूंगे प्रेमी को तो अधेड़ उम्र औरतें भी पसन्द नहीं करतीं।"

मैंने कहना शुरू किया: "श्यामा! तुम........"

श्यामा ने जल्दी से अख़बार को अपनी ओर सरका कर कहा: अच्छा ये रेशम के कीड़े हैं। कितने सुन्दर हैं! तुमने कहां से पाये?

अच्छा यह मादा है, यह नर है; क्या खूब? और अब नर-मादा का प्रेम हो गया। देखो तो यह कीड़ा बड़ा छैला है। पता नहीं इससे क्या क्या मीठी बातें करता है। सभी मर्द ऐसे होते हैं ना? यह जोड़ा तो अलग हुआ।"

"अब ये बाकी तीन कहां जायेंगे? बेचारे किस तरह सिसक रहे हैं, देखो!"

मैंने श्यामा की ओर देखा। सोने की मूर्ति मालूम होती थी वह। होठ थोड़े से खुले थे और चमक रहे थे।

मैंने सिनेमाई ढंग से कहा, "तुम कितनी सुन्दर हो श्यामा! उससे भी अधिक सुन्दर, जितना तुम अपने को समझती हो। मेरी आंखों और तुम्हारे सौन्दर्य के बीच एक पीला परदा है। फिर भी तुम मुझे बहुत सुन्दर दिखाई देती हो। और अगर यह परदा हट जाय तो फिर क्या यह सौन्दर्य मेरी आंखों को चकाचौंध न कर देगा?........और तुम्हारी आंखों में कितनी चमक है—स्वच्छ और पवित्र प्रकाश। नीलोफ़र की तरह खिली हुई..."

इसी समय मां डलिया लेकर अन्दर आई। कहने लगी "बेटा, नीलोफ़र की बात क्या कह रहे हो?"

"कुछ नहीं, मां! यही—यही कि सुना है नीलोफ़र पीलिया में बहुत लाभ करता है।"

"हां, मैं अभी अभी इनसे यही चर्चा कर रही थी, पता नहीं इन्हें अनुकूल पड़े या नहीं?" श्यामा ने सिर झुकाये हुए कहा।

मां श्यामा से बातें करने लगी और मैं दलिया खाने लगा।

श्यामा बहुत सुन्दर थी। इसलिये चाहने वाले भी बहुत थे। वह विवाहिता थी। यहां अपने मैके आई हुई थी। प्रेमियों में वृद्धि होने का एक यह भी कारण था। इसके पिता का देहान्त हो चुका था। किन्तु उसकी माता इस आयु में भी जवानी के सिंगार को बनाये हुए थी। इस कारण भी श्यामा के प्रेमियों की संख्या बढ़

गई थी और उसे कुछ शौक़ीन बना दिया था।

हमारा कस्बा बहुत छोटा था। इतना छोटा कि इसमें केवल पांच हकीम, तीन डाक्टर और दो वैद्य प्रेक्टिस करते हैं। सोढावाटर की केवल एक दुकान है। मलाई की बर्फ बेचने वाला भी एक से ज़्यादा नहीं। वह नौजवान है। वह भी श्यामा का चाहने वाला और मनचला है। श्यामा की मां इससे रोज पाव-आध-पाव मलाई मुफ्त खा जाती है। यहां केवल दो दरजी हैं। एक बेचारा सीधा-सादा आदमी है। वह कमीज की सिलाई दो आने तक लेना बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लेता है। दूसरा रावलपिण्डी पास है। उसने तीन साल तक रावलपिन्डी के एक कारखाने में काम सीखा है। वह केवल उतनी ही सिलाई लेता है जितनी कपड़े की क़ीमत होती है। हमारे कस्बे के नौजवान बड़े शौक़ से उससे कपड़े सिलवाते हैं।

हमारे कस्बे में एक मिडल स्कूल है। पहले प्राइमरी तक ही शिक्षा दी जाती थी। मिडल क्लासें इस साल खुली हैं। हैडमास्टर साहब सुन्दर और हंसमुख जवान व्यक्ति हैं। गाते खूब हैं। दूर से ऐसा मालूम होता है मानो ग्रामोफोन बज रहा हो। आप श्यामा के घर से गुजरते हुए प्रायः गुनगुनाते या गाते हुए जाते हैं। श्यामा भी दरवाज़े पर बैठकर सुन लेती है। उसके चेहरे पर उस समय विचित्र मुस्कराहट होती है। ईर्ष्यावश मैं उसे प्रेम ही कहता हूँ।

हमारे कस्बे में नायब तहसीलदार साहब की भी बैठक है। वे मजिस्ट्रेट भी हैं और वैद्य भी। उनकी असाधारण लोकप्रियता का कारण यही है। फारसी अच्छी जानते हैं और लेखक भी हैं। श्यामा को केवल कलात्मक दृष्टि से देखने और परखने की आदत है। और उस पर इस ढंग से बातें करते हैं, मानो श्यामा श्यामा नहीं, जीवित स्त्री नहीं अपितु कला की प्रतिमा है।

हमारे कस्बे में बाबा थामनगिर का स्थान बहुत प्रसिद्ध है। कस्बे

के लोग इस स्थान के पुजारी को 'बाबाजी' कहकर पुकारते हैं। बाबा जी की जवानी ढल चुकी है, मगर हर बात में जवानों से आगे क़दम धरते हैं—"फ़ना होने से पहले खेलती है मौज पानी पर।" चरस का दम लगाते हैं। शराब पीते हैं और श्यामा से अफ़लातूनी प्रेम रखते हैं। आपका शरीर इकहरा और रंग बगले की तरह सफ़ेद हैं।

सावन!

सावन बरसात का महीना है। सावन में झूले डलते हैं। कवि और नदी-नाले उमंग से भर जाते हैं। दिल में लहरें उठती हैं। खून में उबाल उठता है। मैंने भी अपनी कोठरी छोड़ दी और बाहर बाग में आ गया। सरौल के एक घने छतनारे के नीचे मेरा बिस्तर था। और उसके पास ही एक चिनार पर मेरी छोटी बहन ने झूला डाल दिया था। कस्बे भर की लड़कियां इस झूले पर झूलने आती थीं। बड़ा सुहावना दृश्य होता था। जब श्यामा पींग बढ़ाती तो मेरा दिल बल्लियों उछलने लगता और जब वह पींग बढ़ाते-बढ़ाते चिनार के हरे-हरे पत्तों में गुम हो जाती तो मेरा दिल धड़कने लगता—इस डर से कि कहीं वह गिर न पड़े।

एक दिन जब श्यामा झूला झूल रही थी और मेरा नौकर 'राली' मेरे पैर दबा रहा था, मैंने उससे पूछा "राली! अगर श्यामा गिर पड़े तो क्या हो?"

राली बोला "कौन बाबूजी?"

"श्यामा।"

राली घबराया सा मेरी ओर देखने लगा। उसे मेरी बात समझ में न आई। उसे क्या मालूम था कि प्रेम क्या होता है?

राली बेचारा सीधा-साधा नौकर है। हकला कर बात करता है। पिता के होते हुए भी वह अनाथ है, क्योंकि उसकी सौतेली मां ने उसे घर से निकाल दिया है और बड़े भाई के प्यार और माता पिता के दुलार के अभाव ने जवानी में ही उसे बूढ़ा बना दिया।

मैंने उससे फिर पूछा "राली ! तुम मेरी बात नहीं समझे ?" इतने में श्यामा की माँ दौड़ती हुई आई । कहने लगी "बाबूजी ! ज़रा राली को पनचक्की से आटा पिसा कर लाने की छुट्टी दे दो । बड़ी कृपा होगी । आज ज़रूर वर्षा होगी । अगर राली अभी आटा न ले आया तो फिर नदी में ज्वार आ जायगा । देखिये, बादल पहाड़ों पर कैसे छाये हुए हैं ।"

राली बोला "मैं अभी जाता हूँ ।"

मैंने कहा "मेरी ओर से छुट्टी है ।" राली यह सुनते ही उठ खड़ा हुआ ।

मैंने आकाश की ओर आंख उठाई । चारों ओर से बादलों की घटायें उमड़ रही थीं । पश्चिम के पहाड़ों की चोटियां काली घटाओं से ढक चुकी थीं । मैंने दिल में सोचा , आज नदी में बाढ़ आयगी । पहाड़ी नाले कमज़ोर आदमी के क्रोध की तरह जल्दी उभरते हैं और जल्दी ही उतर जाते हैं । सावन के दिनों में नदी कई प्राणों की बलि ले लेती है । नदी का प्रवाह अचानक ठाठें मारता हुआ आता है और किनारों से उछल कर मैदानों में फैल जाता है । गाँव के गाँव डूब जाते हैं । माल-मवेशी और अनाज की जो हानि होती है उसका अनुमान लगाना कठिन है ।

अम्मां मेरे पास आकर कहने लगी "अन्दर चलो, आज बरसात खूब जमकर होगी । घटायें तुली खड़ी हैं । राली कहाँ है ?"

"श्यामा की मां ने पनचक्की से आटा लाने को कहा था । उधर ही गया होगा । चलो, अन्दर चलता हूं ।" मैंने कहा ।

लड़कियों के झूला झूलते २ बरसात शुरु हो गई । पल में जल-थल हो गया । नदी का कोलाहल मेरे कमरे में भी सुनाई देने लगा । ...

रात के दस बज गये । राली न आया । मां इसी चिन्ता में मेरे पास खोई-खोई सी बैठी रही और कहती रही "कम्बख्त को इस समय जाने की क्या ज़रूरत थी ? इन्कार कर देता ।"

मैंने धीमे से उत्तर दिया "मैंने ही छुट्टी दे दी थी।"

"तुम भी नादान हो। वह भला इस मूसलाधार बरसात में कैसे आयगा? ज़रा नदी का शोर तो सुनो। पानी ठाठें मार रहा है। कहीं उस पार ही न रह गया हो?"

ग्यारह बज गये मगर नींद न आई। दीये की काँपती शिखा में मैंने देखा कि मां वहीं बैठे बैठे सो गई है। इतने में आंगन में आहट हुई। किसी ने दीवार के साथ अपनी लाठी टेक दी और लम्बी सांस ली।

मैंने कहा "राली है?"

"जी हाँ।"

"आटा दे आये?"

"दे आया बाबू जी! उनके घर तो सब सोये पड़े थे। विधवा को जगाया और उसको आटा देकर अभी आ रहा हूं।"

"कम्बख्त! मैं पूछता हूँ तुम आटा कैसे ले आये?"

"खाल में बाबू जी! बिल्कुल भीगने नहीं दिया। नदी बड़े ज़ोरों पर थी। परमेश्वर ने ही जान बचाई।"

"बेवकूफ़! तुम्हें आने की इतनी क्या जल्दी थी? नदी के उस पार ही रह जाते?"

"मैंने सोचा, श्यामा भूखी रहेगी,....."

"जवाब सुनकर मैं अचरज में रह गया। यह बैंगन के पौधे में अंगूर के गुच्छे कैसे उगे?" कड़वे स्वर में उससे पूछा: "और अगर तुम नदी [illegible] जाते तो..........."

राली थोड़ी देर चुप रहा। फिर हकला कर कहने लगा: "मेरा... रा...रा क्या है बाबूजी! यह जिन्दगी क...क...क किसी के काम आ जाती। मैं अपने आप को भाग्यवान समझता।"

"कम्बख्त मजनू भी कोई तेरी तरह का गंवार होगा।"

"क्या कहा बाबूजी?"

"कुछ नहीं, जाओ, सो रहो।"

"अब दीपक की लौ मन्द पड़ चुकी थी। केवल एक पतंगा उसके चारों ओर घूम रहा था। मैं एकटक उसे देखने लगा। पतंगा...... ....दीपक...........राली...........पतंगा.............. राली...........पतंगा। श्यामा.........................दीपक ....।

बाबा थामनगिर का स्थान नदी के किनारे श्मशान भूमि के पास है। उसमें एक छोटा सा मन्दिर है और एक छोटा सा बाग। और उसके साथ कपड़े धोने का चौबच्चा है। बाबाजी और उनका चेला सोमनाथ वहीं देवी के चरणों में आसन जमाते हैं और रात को भी वहीं सो रहते हैं। नदी में हर साल बाढ़ आती है। किन्तु मन्दिर सुरक्षित रहता है। पिछले साल तो घाट भी वह गया था। मगर मन्दिर जैसा था वैसा बना रहा। लोग इसे बाबाजी का चमत्कार कहते हैं। श्यामा की मां रोज़ बाबाजी को प्रणाम करने जाती है। श्यामा भी कभी-कभी मां के साथ जाया करती है। मैंने पहले पहल उसे बाबाजी के बाग में ही देखा था। उसने जूही के फूलों का एक गुच्छा अपने बालों में लगा रखा था और दुपट्टे में फूल चुन-चुनकर रख रही थी। आह—जूही के फूल!

उस पहली मुलाकात को बहुत दिन हो गये। किन्तु आज फिर वह पहली निगाहें और जूही के फूल मुझे रह रह कर याद आ रहे थे। हम घड़ी की सूइयों को उलट-पुलट कर सकते हैं किन्तु ज़माने की सूई को उल्टा फेर देने की किसी में शक्ति नहीं है। क्या ही अच्छा होता वे पहली नज़रें मुझे वापिस मिल जातीं, मैं उन्हें फिर एक बार देख लेता। वो नज़रें, जिन्होंने मेरे दिल में उमंगों का ज्वार पैदा कर दिया था, जिन्होंने प्रेम की सोई हुई नदी में नया प्रवाह भर दिया था। किंतु आज वह सचाई केवल स्वप्न बनकर रह गई है—आकाश की तरह रंगीन किन्तु क्षितिज की तरह दूर...........

राली मेरे पांव दबा रहा था। मैंने उसे धीमे से कहा "राली! मन्दिर से जूही के फूल लाओगे?"

राली बोला: 'बाबूजी! बरसात पड़ रही है।" कुछ देर में वह स्वयं उठ खड़ा हुआ और बोला: "अच्छा जाता हूँ।"

राली उसी मूसलाधार बरसात में उठकर चला गया। मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं और अपनी स्वप्नों की दुनियां में डूब गया। उस दुनिया को मुझ से कोई छीन नहीं सकता। इस विश्वास से दिल को बड़ी सान्त्वना मिलती है कि वह दुनियां मेरी है और जीवन के अन्तिम क्षण या दिल की अन्तिम धड़कन तक मेरी रहेगी। शायद अब वह दुनियां ही मेरे जीवन की एकमात्र निधि है। उस दुनिया में पहुँच कर मुझे अनुभव होता है कि मैं एक नाव बन गया हूं; ऐसी नाव जो चारों ओर से पानी से घिरी हुई है। लहरें खेलती हैं, मुस्कराती हैं, डूबते हुए सूरज की लाल किरणों को उचक-उचक कर प्यार करती हैं। अचानक मैं अपने बाजू फैला देता हूँ और लहरें अपने कन्धों पर लिये हुए मुझे दूर-दूर बहा लेजाती हैं। पता नहीं किस ओर? न जाने क्यों?

पता नहीं, मैं कितनी देर इसी कल्पना-लोक में विचरता रहा। न जाने कितनी देर और इसी लोक में रहता यदि मां मेरा कन्धा झंझोड़ कर जगा न देती और कहती "बेटा! उठो तो सही। वह देखो राली........"

मैंने धीमे से कहा "क्या बात है मां, राली फूल ले आया?"

मां ने कहा "अच्छा! तो तुमने उसे मन्दिर भेजा था? उस की बांह टूट गई है। और उसके सिर पर कई चोटें आई हैं। बरामदे में पड़ा है।"

मैं जल्दी से उठकर बरामदे में गया। राली आंखें बन्द किये चारपाई पर पड़ा कराह रहा था। सिर पर, दायें हाथ पर, पट्टियाँ बंधी थीं। मैंने पूछा "बेवकूफ! क्या मन्दिर में बाबाजी से लड़ पड़े? अगर

वह फूल न देते थे तो वापस चले आते। झगड़ा करने की क्या ज़रूरत थी? सोमनाथ ने भी पीटा होगा तुम्हें? जैसा गुरु वैसा चेला।

"वह मन्दिर कहाँ रहा बेटा! तीन दिन से निरन्तर वर्षा हो रही थी। इस कम्बख्त झड़ी को कुछ लेकर ही टलना था। आज नदी में ऐसा वेग है कि ईश्वर ही रक्षा करे। ज़रा शोर तो सुनो। जब राली फूल लेने मन्दिर की ओर गया तो मन्दिर के चारों ओर पानी चढ़ रहा था और घाट पर बह रहा था।"

मैं एक ही सांस में कह गया "किन्तु......मैंने तो उसे यूं ही भेज दिया था। अगर पानी चढ़ रहा था, न जाता। ऐसी भी......"

"कैसे न जाता बेटा!......वहाँ श्यामा......"

"क्या कहा, श्यामा?"

"माँ मेरी बात अनसुनी करके बोली "और देखो, यह बाबा और उसका चेला, कितने कमीने निकले। इनको इतना भी विचार न हुआ कि......"

मैंने बात काटते हुए कहा "मगर श्यामा क्या?"

मां जल्दी से बोली, "कह तो रही हूँ बेटा कि श्यामा भी वहाँ गई हुई थी, और देवी जी को प्रणाम करके बाग में जूही के फूल चुन रही थी कि बरसात ने आ घेरा। तब वह वहीं मन्दिर में ठहर गई। सोचा होगा वर्षा थमे तो जाऊँ। आन की आन में जल-थल हो गया। मन्दिर के चारों ओर पानी लहरें मारने लगा और जब नया घाट भी बहने लगा और नदी का रुख मन्दिर की ओर मुड़ा तो बाबाजी बड़े घबराये। चेले समेत भाग खड़े हुए।

मैंने जल्दी से पूछा, "और श्यामा को वहीं छोड़ दिया?"

"कुछ न पूछो, जान तो सब को प्यारी होती है। जब राली वहां पहुंचा तो पानी ने मन्दिर को चारों ओर से घेर लिया था। श्यामा सीढ़ियों पर खड़ी चीखें मार रही थी और बाबाजी और उनका चेला तैरते हुए किनारे की ओर आ रहे थे।"

मैंने घृणा के स्वर में कहा "कमीने !"

इतने में किसी ने बाहर से दरवाज़ा खटखटाया। मां अन्दर चली गई। नायब तहसीलदार साहब बरामदे में आकर राली के सिरहाने बैठ गये और कहने लगे "आपके नौकर ने आज बड़ी बहादुरी दिखाई। मन्दिर की गिरती हुई दीवारों और लहरें मारते हुए पानी के ज्वार भाटे से श्यामा को बचाकर ले आया। चोटें तो बहुत लगी हैं बेचारे को। मैंने डाक्टर से वहीं पट्टी आदि का प्रबन्ध कर दिया था। आज शाम को डाक्टर फिर आयगा।..........राली, बेटा तुम बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे।"

इतना कहकर तहसीलदार साहब चुप हो गये और राली की ओर देखने लगे। राली चुपचाप लेटा हुआ था। मैंने उसकी नब्ज़ देखी तो वह फूट-फूट कर रोने लगा।

मैंने पूछा "क्यों रोते हो राली ?"

राली ने धीमे से जवाब दिया "बाबूजी, सिर में बड़ा दर्द है।"

तहसीलदार साहब चारपाई से उठकर बोले "अच्छा, तो मैं जाता हूं और डाक्टर को आपके यहां भेजता हूं। चोटें तो मामूली हैं। एक-दो दिन में ठीक हो जाएंगी। चिन्ता न करें। श्यामा का पति, सुना है, कल यहां आजायगा।

वह चले गये। मैं चुपचाप राली के पास बैठा रहा। श्यामा का पति कल यहां पहुँच जायगा........कल........चिन्ता न करें—चोटें मामूली हैं—चोट.. ....काश कि तहसीलदार साहब को मालूम होता कि ये चोटें मामूली नहीं हुआ करतीं।

मां राली के लिये गरम दूध ले आई। मैं चमचे से उसे पिलाने लगा। मां की आंखों से आंसू बह रहे थे।

इस घटना के पांच दिन बाद श्यामा अपने पति के साथ चकवाल चली गई।

जाने से पहले वह मुझे मिलने आई।

"मैं आज जा रही हूं भैया !"

उसका चेहरा पीला था और होंठ अनार की कली की तरह लाल थे।

मैंने मौन दृष्टि से उसे देखा और चुप हो रहा। मां ने हाथ ऊपर उठाकर उसे आशीर्वाद दिया, "परमेश्वर तुम्हारा सुहाग सदा बनाये रखे !"

"राली किधर है भैया, मैं उसे मिले बिना न जाऊँगी।"

मां ने कहा, "राली चश्मे से पानी भरने गया है। अब आता ही होगा।"

घन्टा, पौन घन्टा बीत गया किन्तु राली न आया।

मैंने बहुत नरम शब्दों में धीमे से कहा, "शायद वह नहीं आयगा श्यामा !"

शायद वह मेरी बात समझ गई। जल्दी से उठ खड़ी हुई और धीरे से बोली, "तुम अच्छे हो जाओगे भैया !" फिर, उसने सिर झुका कर मां को प्रणाम किया।

और, वह चली गई—चुपचाप, सिर झुकाये, अपराधी की तरह।

मनुष्य के सब प्रयत्न व्यर्थ जाते हैं। वह कितना परवश है। दुनिया खुद कितनी अशक्त है। जीवन का क्या मूल्य है? इसे मुट्ठी में बन्द करके चुरमुर कर दिया जाय—इस तरह कि यह कण-कण होकर बिखर जाय तो क्या हो?...किसलिये? क्योंकर?

मन में विचारों की आँधी-सी थी। किन्तु सब व्यर्थ, बेकार।

बहुत देर बाद राली आया। उसका चेहरा उतरा हुआ था, होंठ नीले पड़ गये थे। थोड़ी देर ठहर कर जब वह मेरे पांव दबाने बैठा तो मैंने उससे पूछा, "राली! आज कहाँ रहा?"

"हां, मुझे देर हो गई बाबू जी, क्षमा कर दो।" उसने उत्तर दिया।

कुछ देर हम दोनों चुप रहे। फिर राली बोला, "आपने जूही के फूल

मांगे थे। आप यह गुच्छा ले सकते हैं।" यह कहकर उसने जेब से फूलों का गुच्छा निकाला और मेरे हाथ में दे दिया। पुराने फूल थे। मगर अभी उन में सुगन्ध थी।

मुझे तहसीलदार साहब की बात याद आ गई। मैंने कहा, "राली! इसे तुम रख लो। इसे तुम्हीं अपने पास रखो।"

"नहीं बाबू जी! मैं इसे नहीं ले सकता।"

"क्यों?"

राली चुप हो रहा।

मैंने एक फीकी-सी हँसी हँसते हुए कहा, "राली! मुझे मालूम नहीं था कि तुम इतना भावुक हृदय रखते हो।" राली चुप बैठा रहा, न हिला न जुला। मिट्टी की मूर्ति की तरह सिर झुकाये, धीमे से मेरे पांव दबाने लगा। गरम आँसुओं की एक दो बूंदें मेरे पांव पर गिर पड़ीं।

जीवन का खेल कितना विचित्र है?

श्यामा...बाबा जी...राली...सोमनाथ...रेशम के कीड़े...जीवन का खेल सचमुच बड़ा विचित्र है।

: १२ :

एक रुपया एक फूल

पहला दृश्य

मिस बेला वाटलीवाला का शयनगृह। शयनगृह में झालरों की भरमार है। रेशमी लेस के पर्दों पर झालरें चुनी हुई हैं और साटन के बिस्तर पर झालरें हैं। तकिये पर झालरें चुनी हुई हैं और बिस्तर की चादरों पर और मेज़पोशों के कोनों पर। दीवारों पर जो स्विटज़रलैंड के दृश्य और फिलम-स्टारों के चित्र टंगे हुए हैं उनके फ्रेम भी बड़े-बड़े और झालरी हैं। मालूम होता है कि मिस बेला के रेशमी हृदय के इर्द-गिर्द भी इसी तरह कई प्रकार की कंवारी भावनाओं की झालरें लगी हुई हैं जो वायु के ज़रा से झोंके से कांप उठती हैं, जिस प्रकार इस समय, सुबह के वक्त, बेला के शमयगृह के पर्दों की झालरें कांप रही हैं।

पर्दा उठने पर बेला बिस्तर पर औंधे मुँह पड़ी नज़र आती है। फिर करवट बदल कर अंगड़ाई लेकर, हाथ आंखों पर लेजाकर किसी धनाढ्य घर की लाडली बिल्ली की तरह आवाज़ें निकालती है। फिर उठकर बिस्तर पर बैठ जाती है और ज़ोर से चिल्लाती है। चिल्लाने पर जो दासी प्रवेश करती है वह सुन्दर, जवान और चंचल है। वह बेला से भी अधिक शरीफ़ और ऊँचे घराने की मालूम होती है। ऊँचे घराने की सभी दासियां ऐसी ही दिखाई देती हैं!

बेला—मेरी, मेरी, ए, री मेरी, किधर मर गई मेरी !

मेरी—चाय लाई बेला मेम साहब !

बेला—चाय की बच्ची, अरी नौ बजने को आये। तूने हमें जगाया क्यों नहीं अब तक ?

मेरी—सरकार ! रात के ग्यारह बजे तो पार्टी से लौटी। मैंने कहा ज़रा आप सो लें।

बेला—सो लें की बच्ची, तूने आज हमें नाइटसूट भी नहीं पहनाया। मेरे दो हज़ार के गाऊन का सत्यानाश कर दिया कम्बख्त !

मेरी—सरकार क्या निवेदन करूँ। वह आप के साथ जो मरदुवा था वह सीधा यहाँ बैडरूम में घुस आया। लड़खड़ाते हुए कदमों से वह आप से कह रहा था "मैं गंजे सिर वाला सीज़र हूँ" और सच तो यह है कि वह गंजे सिर वाला तो अवश्य था लेकिन सीज़र किसी तरह मालूम न होता था।

बेला—अरी संभल कर बात कर, जानती भी है तू मिस्टर गोहाटी के बारे में बात कर रही है जो पेटरविलियम कम्पनी के सब से बड़े मैनेजर हैं।

मेरी—नहीं सरकार, मिस्टर गोहाटी को तो मैं अच्छी तरह जानती हूं। वह तो कोई सांवले रंग का, दोहरे बदन का—

बेला—अच्छा तो कोई और होगा। पार्टी में मिला होगा, खैर फिर क्या हुआ ?

मेरी—फिर क्या होता सरकार, वह कह रहा था—"मिस बेला पाटलीवाला, सुनो मैं गंजे सिर वाला सीज़र हूँ" और आप कह रही थीं "सुनो मिस्टर जौंज़, मैं मिश्र की क्लोपैट्रा हूं।" इस पर वह मरदुआ आप के गाऊन का किनारा आंखों पर रख कर रोने लगा और आप ने अंग्रेज़ी में कहा "Lay off Jones" तो उसने गाकर कहा—

I like bananas,
Because they have no bones.

बेला—(हंसती है)

मेरी—बस फिर आप इसी प्रकार हँसने लगी और हँसते-हँसते सो गई और वह भी गालीचे पर लेट गया।

बेला—हाय! कहाँ? यहाँ?

मेरी—हाँ हजूर, बिल्कुल आप के पलंग के नीचे। वह तो अच्छा हुआ, मैं यहाँ मौजूद थी, मैंने फ्रांसिस को बुलाया और हम दोनों उसे घसीट कर लिफ्ट के पास ले गये और उसे उसमें बन्द कर दिया। वहाँ वह अब तक पड़ा सो रहा होगा।

बेला—हाय मेरी, मैं भी कितनी मूर्ख हूँ, एक दम उल्लू। लेकिन रात की पार्टी थी भी बड़ी धमा-चौकड़ी वाली। एक दम होश भुला देने वाली। हाय हाय क्या नये नये काकटेल बना कर पिलाये गये हमें और वह जो नया अमरीकी हाक्स आया है उसने एक बिल्कुल ही नया नाच सिखाया है हमें। जेट्र रम्बा कहते हैं उसे। यह न चका चका बोम चक है, न चका चका बोम, बल्कि यूं चलता है—चका चका चका, बोम बोम बोम, चका चका चका, बोम बोम बोम—अरे मैं फिर भूल गई—अच्छा खैर छोड़ो। आज का अखबार देखा? क्या खबर है? (मेरी चाय की मेज़ के कोने से अखबार उठाती है और उसे खोल कर अपने सामने रख लेती है, फिर बेला की ओर देखती है, फिर अखबार की ओर और फिर मुस्करा कर पढ़ना शुरू करती है)।

मेरी—चीन में.........

बेला—ऊँहूं, चीन नहीं, आगे चल।

मेरी—इंडोचायना में.........

बेला—नहीं नहीं, आगे.......

मेरी—वर्मा........

बेला—बर्मा, मलाया, स्याम, इंडोनेशिया कुछ नहीं चाहिये, आगे देख कहीं कोई मजेदार खबर।

मेरी—शानविला की एक औरत ने अपने पति को कत्ल करके उस के एक सौ बाईस टुकड़े कर दिये।

बेला—अरे हाँ, यह हुई न खबर, देख कोई ऐसी ही और चटपटी खबर।

मेरी—बम बम बनासरी के अकालग्रस्त लोगों से वहां के मंत्री ने अपील की है कि वे लोग केले के पत्ते खाया करें।

बेला—ऊहूँ, यह चटपटी खबर है? तूने कभी केले के पत्ते खाये हैं मेरी? अगला पन्ना उलटो।

मेरी—एक प्रेमी ने अपनी प्रेमिका के पति को गंधक का तेज़ाब पिला दिया।

बेला—वाह, वाह वा...

मेरी—जबलपुर में एक स्त्री के बच्चा पैदा हुआ जिसका सिर कुत्ते का था।

बेला—हाय, मेरी! यह भी कभी संभव हो सकता है कि आदमी का सिर कुत्ते का हो।

मेरी—ऐसा आदमी तो नहीं देखा मिस साहब, जिसका सिर कुत्ते का हो, लेकिन ऐसे आदमी ज़रूर देखे हैं जिनके सिर आदमियों के लेकिन बुद्धि कुत्ते की सी होती है।

बेला—शटअप।

मेरी—बहुत अच्छा मिस साहब!

बेला—अखबार बन्द कर दे।

मेरी—बहुत अच्छा मिस साहब!

(अखबार बन्द करके अपनी गोद में रख लेती है)

बेला—आगे से मैं तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछूंगी, कोई बात नहीं करूंगी। तुम लोगों से बात करना पाप है। मिस्टर गोहाटी सच कहते थे निर्धन आदमियों को मुंह लगाया जाय तो सिर पर चढ़े आते हैं। एक कदम की जगह दो तो सारा खेमा छीन लेते हैं। भला यह भी कोई ढंग है बात करने का? मैं तुमसे कुत्तों की बात कर रही हूं कि आदमियों की? मैं शकल की बात कर रही हूँ या अकल की? मैं पूछती हूँ (चिल्लाकर) तुमको इस तरह मेरे सामने बोलने का अधिकार किसने दिया है, किसने दिया है?

(टैलीफोन की घंटी बजती है)

मिस बेला—बाटलीवाला, ओफ़ो डार्लिंग, जमशेद, तुम कहां हो, डार्लिंग, कलकत्ते में? मैं मर गई। मुझे तो तुम्हारे बिना यह शहर काट खाने को दौड़ता है। ज़िन्दगी हराम होगई है डार्लिंग, कोई क्लब, कोई नाच घर, कोई पार्टी तुम्हारे बिना अच्छी नहीं लगती। जब से तुम यहां से गए हो, मैं अपने कपड़ों में खुशबू लगाना भूल गई हूँ, बाल बनवाना भूल गई हूँ। तुम्हें मेरे सुर्ख बाल याद हैं—याद हैं? अच्छा, सुनो अब मैंने उनका रंग तबदील कर दिया है। हां, मैं एक बार बाल बनवाने गई थी, केवल एक बार डार्लिंग! पैरिस से मिस फ़ीफ़ी फिटफिट फांफां आई है। नहीं, डार्लिंग, यह कोई मोटर साइकिल नहीं है। यह पैरिस की सब से मशहूर बाल बनाने वाली औरत का नाम है—हां, सुनो, मैंने अब अपने सुर्ख बालों को प्लाटिनम के रंग का सा कर लिया है। बिल्कुल पलाटिनम की तरह! जैसे मिस फ़ीफ़ी फिटफिट फांफां कहती थी, मेरे बाल अब ऐसे होगये हैं जैसे चान्दनी रात में ब्ल्यू डेन्यूब का नग़मा। हाय डार्लिंग! अच्छा तुम जल्दी से आ जाओ, नहीं तो मैं तुम से सदा सदा के लिए रूठ जाऊंगी—बाई बाई, जमशेद!

(टेलीफोन रखकर, मुस्करा कर मेरी की ओर घूमती है और मुस्कराती हुई कहती है)—

बेला—मेरी ! यह मेरा मंगेतर था।

मेरी—कौन सा सरकार ? सातवां या आठवां ?

बेला—(चिल्लाकर) मेरी (एक दम घंटी बज उठती है) देखो कौन है ?

(मेरी देखने के लिए बाहर जाती है और फिर तुरंत पलट आती है)

मेरी—हज़ूर डाक्टर नंगाबच्चा पधारे हैं।

बेला—आने दो।

(मेरी बाहर जाती है और फिर डाक्टर नंगाबच्चा के साथ प्रवेश करती है। डाक्टर नंगाबच्चा छोटे कद के हैं और सांवले रंग के और अधेड़ आयु के। बहुत बढ़िया सिला हुआ सूट पहने हुए हैं। हाथ में हीरे की तीन अँगूठियां हैं। गरदन आगे को झुकाये सारस की तरह बात करते हैं। आवाज़ बेसुरी और भारी है और बिगड़े हुए बाजे की तरह उसमें से कई सुरें निकलती हैं। डाक्टर नंगाबच्चा मनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं और उनकी लायब्रेरी में नंगी औरतों के चित्रों वाले रिसाले बहुत पाये जाते हैं।

बेला—हैलो, डाक्टर बच्चा !

डाक्टर—हैलो मिस बेला, हाऊ आर यू ?

बेला—फाइन, आप कैसे हैं ?

डाक्टर—डकी डकी।

मेरी—ट्रा ट्रा।

बेला—मेरी, क्या बात है ?

मेरी—क्षमा कीजिये सरकार, मैंने समझा डाक्टर साहब किसी गधे को हांक रहे हैं।

बेला—तुम बाहर चली जाओ।

(बेला के कहने पर मेरी बड़ी श्रदा से बाहर चली जाती है, जैसे वह बेला पर कोई कृपा कर रही हो।)

डाक्टर—आपकी दासी बड़ी मुँहफट है।

बेला—है तो, लेकिन दिल की बुरी नहीं, और फिर डाक्टर यथा! मेरी, मेरी बीस साल की जिन्दगी के सब भेद जानती है। मेरा यह मतलब नहीं कि मेरी जिन्दगी में ऐसे भेद भी हैं जिन्हें मैं आप पर प्रकट नहीं कर सकती लेकिन आप जानते हैं कि एक अमीर और कंवारी लड़की को जिसने अभी जीवन की पचीस बहारें भी न देखी हों, उसे मेरी ऐसी दासी की कितनी ज़रूरत रहती है।

डाक्टर—ठीक है। लेकिन, मेरे विचार में आपको दासी की इतनी जरूरत नहीं जितनी एक ऐसे वफ़ादार पुरुष की जो हर समय आपका साइको-अनैलिसिस कर सके।

बेला—क्या यह कोई नई तरह की मालिश है?

डाक्टर—यह मालिश नहीं, यह जीवन के रोग का नया इलाज है। मिस बेला बाटलीवाला, आपको मेरे ऐसे पुरुष की सख्त ज़रूरत रहेगी। जैसे उगते हुए पेड़ को आक्सीजन की ज़रूरत होती है, इसी तरह आपको हमेशा मेरी ज़रूरत रहेगी क्योंकि आपको इडीपस-कम्पलैक्स है—इडीपस-कम्पलैक्स!

बेला—ग़लत है डाक्टर साहब! मेरे पास तो वही पुरानी फ़ोर्ड है।

डाक्टर—मैं गाड़ियों की बात नहीं करता हूं, मिस बेला बाटली-वाला, मैं एक ऐसे पुरुष की बात कह रहा हूं जो संसार के हर रोग का इलाज बिना औषधि के कर सकता है।

बेला—हाय, कितना रैशनल इलाज है यह!

डाक्टर—बेला, बेला, मुझे टालो नहीं, मेरी जान मुझे तुम से

कितना प्रेम है। कितना गहरा, कितना महान, समुद्र की तरह। काश! तुम्हें इसका अंदाज़ा होता। हाथ न छुड़ाओ बेला, इधर देखो, मेरी आंखों में क्या है?

बेला—मेरा बैंक बैलंस।

डाक्टर—मिस बाटलीवाला!

बेला—डाक्टर नंगाबच्चा!

डाक्टर—मैं—मैं अभी यहाँ से जाता हूं।

बेला—मेरी! मेरी! डाक्टर साहब जा रहे हैं, आप को लिफ्ट तक ले जाओ।

मेरी—(कमरे में आकर) सरकार लिफ्ट में तो मिस्टर जोन्ज़ शेव कर रहे हैं।

बेला—मिस्टर जोन्ज़ लिफ्ट में?

मेरी—हाँ सरकार, और कहते हैं कि वह लंच भी वहीं खाएंगे और फिर शाम का खाना भी। वह कहते हैं जब तक मिस बाटलीवाला स्वयं आकर.........

बेला—ठहरो ठहरो, मैं स्वयं जाकर देखती हूँ (मिस बेला बाटलीवाला मेरी और नंगाबच्चा के साथ कमरे से बाहर जाती है।

दूसरा दृश्य

मिस्टर जोन्ज़ मिन सनाई का रहने वाला अमरीकी इंजीनियर है, जो एक अरसे से भारत में रह रहा है। लेकिन कल शाम से मिस बेला बाटलीवाला के फ्लैट की सीढ़ियों की लिफ्ट में रह रहा है। उसकी

टांगें लम्बी, बाहें छोटी, ओंठ मोटे और बुद्धि पतली है। गले में टाई फांसी की रस्सी की तरह झूल रही है, लेकिन इस समय उसका विचार आत्महत्या करने का नहीं है। टाई का रंग पीला है और उस पर पर्ल-हार्बर में डूबे हुए जहाज़ों के चित्र बने हुए हैं। मिस्टर जोन्ज़ को शराब पीने के बाद हर औरत को बेबी कहने की आदत है और प्रायः मस्तिष्क के ऊपरी भाग और नाक के निचले भाग से बात करने का शौकीन है। उसकी आवाज़ नाक के भीतर से इस प्रकार निकलती है जैसे उसने अपने नथुनों में जापानी बैंजू लगा रखा हो।

मिस्टर जोन्ज़ भारत जनतंत्र का सरकारी नौकर है। वह पिछले तीन वर्ष से एक सहरा जैकट का ब्लूप्रिंट सोच रहा है जिस की कागजी तैयारियों में दस वर्ष लगेंगे। उसके बाद अगले तीस वर्ष में उसी सहरा जैकट द्वारा सारे राजपूताने के मरुस्थल को पानी की झील में परिवर्तित कर दिया जायेगा और उसके बाद यदि वह जीवित रहा तो उसके कारनामे के बदले में उसे महावीर चक्र प्रदान किया जायेगा। अभी तो उसे केवल पैंतीस सौ रुपये मिलते हैं और शराब का परमिट......

जोन्ज़ सीधा सादा, विश्वासपात्र, मुँहफट अमरीकी है। जो दिल में आए साफ़ कह देता है। इस समय शराब में धत बोतल हाथ में लिये लिफ़्ट में लेटा गा रहा है:—

I like Bananas because they have no bones.

बेला—ऐ मिस्टर जोन्ज़ !

जोन्ज़—हाई Good-looking (उठकर बैठ जाता है)।

बेला—यह आप ने मेरे घर को क्या समझ रखा है—यह होटल है, सराय है या आप के चचा का घर है ?

जोन्ज़—हाई Killer, जब तुम नाराज़ होती हो तो और भी अच्छी लगती हो। जाओ दुआ देता हूं जीवन भर मुझ से नाराज़ रहो पोनो, कल रात को मैंने पार्टी में अपने सपनों की रानी को देखा, उसके बाल पलाटिनम की रंगत के थे और उसका रेशमी गाऊन पैरिस की

खुशबू की तरह अनुभूतिपूर्ण था और नाचते समय जब वह मेरी ओर देखकर मुस्कराती थी तो मुझे ऐसी अबोध दिखाई देती थी जैसे—जैसे सुबह के वक्त रीफ्रिजिरेटर में रखी हुई दूध की बोतल। क्षमा कीजिये सेवक कवि नहीं है कि उपमाएं ढूंढता फिरे। अपना काम तो पुल बनाना है।

बेला—नहीं जोन्ज़ डार्लिंग! तुम पुल ही नहीं काकटेल भी अच्छी बना लेते हो और नाचते भी अच्छा हो।

जोन्ज़—तो क्या तुम्हारा मेरा ब्याह हो सकता है? मेरा मतलब है अगर तुम्हारा गुज़ारा पैंतीस सौ में हो सकता है तो......

बेला—पैंतीस सौ तो मेरे कुत्तों का खर्च है।

जोन्ज़—तो एक और पाल लो डार्लिंग!

बेला—सोचूंगी, इस समय तो तुम लिफ्ट से बाहर निकल आओ और चलकर मेरे साथ नाश्ता करलो।

जोन्ज़—वाह वाह! ज़रा सहारा देना बेबी (जोन्ज़ मेरी का सहारा लेकर लिफ्ट से बाहर आता है।)

तीसरा दृश्य

मिस बेला बाटलीवाला का बाथरूम जिसके भीतर से बेला के शयनगृह का एक भाग दिखाई देता है एक पूरी दीवार शीशे की है जिससे बाथरूम की लम्बाई-चौड़ाई विस्तृत मालूम होती है। फ़र्श की टाइलें रंगीन हैं और दीवारें गुलाबी और बाथ-टब संगमरमर का है, जिसके निकट रैक में तरह-तरह के साबुन और सुगन्धियाँ और सुगन्धित तेलों की शीशियाँ हैं जो पेरिस, लन्दन और न्यूयार्क से आई हैं। मिस बेला को हालीवुड के शैम्पू पसंद हैं। आजकल

तो मध्य वर्ग की औरतें भी वही मेकअप करने लगी हैं, इसलिए अब उस में कोई मजा नहीं रहा। शृँगार-मेज़ बहुत लम्बा-चौड़ा है और उस पर बिजली का प्रकाश दीवारों के भीतर से पड़ता है। और कपड़े रखने के बक्स सारे के सारे काँच के बने हुए हैं। एक तिपाई पर टेलीफ़ोन पड़ा है और उस के निकट ही पुस्तकों की अलमारियां हैं। बेला टब के हल्के गरम पानी में बैठ कर अध्ययन करने की शौकीन है, लेकिन इस समय वह अध्ययन नहीं कर रही बल्कि मेरी से अपने केश सुलझवा रही है।

(टेलीफ़ोन की घंटी बजती है)

बेला—मिस बेला बाटलीवाला !

ठंगा राम—मिस बेला बाटलीवाला ? हां देखिये मैं भूसा राम तूसा राम भूसा राम हाल से बोल रहा हूँ। आपको याद है आप ने रिफ्यूजी फँड में दो हजार चंदा दिया था और हम ने आप से प्रार्थना की थी कि आप हमारे रिफ्यूजी लोगों के जलसे में आकर भाषण देंगी। याद है ना आपको ? मैं चंगा राम ठंगा राम ढींगा राम भांगिमानी बोल रहा हूँ। हां ठीक साढ़े पाँच बजे पहुँच जाना। हम को टरखाना नहीं, नहीं तो रिफ्यूजी लोग गुस्सा होईंगा, राम राम, नमस्ते, जय हिन्द !

बेला—ओह काश !

मेरी—क्या बात है सरकार ?

बेला—मेरी ! क्या मैं दिन-रात देश और जाति की सेवा नहीं करती ?

मेरी—बेशक, बेशक !

बेला—इनके दुख में दीपक की तरह नहीं जलती ?

मेरी—बेशक, बेशक !

बेला—उनके फायदे के लिये अपने रुपये नहीं लुटाती ?

मेरी—बेशक, बेशक !

बेला—क्या बेशक-बेशक लगा रखी है, जानती भी है तू क्या कह रही है ?

मेरी—मैं क्या करूं मिस साहब ? हां करती हूं तो आप नाराज़ होती हैं, ना करती हूं तो आप ख़फ़ा होती हैं। आख़िर मैं क्या करूं—क्या करूं ?

बेला—कुछ न कह, बस जल्दी से मुझे एक भाषण लिख दे। मैं रिफ्यूजी लोगों के जलसे में बोलूंगी।

मेरी—बहुत अच्छा मिस साहब !

बेला—और टेलीफ़ोन करके बाथरूम का टब ठीक कराने के लिए आदमी बुलवा दे जल्दी से।

मेरी—बहुत अच्छा मिस साहब !

बेला—और हां देख, भाषण बहुत छोटा होना चाहिये। बड़ी बड़ी बातें मुझे पसंद नहीं।

मेरी—जी हां, छोटा मुंह बड़ी बात वाली बात हो जाएगी।

बेला—क्या कहा ?

मेरी—जी ? कुछ नहीं ? योंही भाषण का एक नुक्ता सोच रही थी।

बेला—शाबाश मेरी, तू बहुत अच्छी लड़की है। भला तू किसी अच्छे आदमी से शादी क्यों नहीं कर लेती ?

मेरी—सरकार अपनी मसरूफ़ियां कम करें तो दासी भी इधर ध्यान दे।

बेला—शट-अप !

मेरी—बहुत अच्छा सरकार !

(टेलीफ़ोन की घंटी बजती है)

बेला—मिस बेला बाटलीवाला ! ओह मोहन डार्लिंग ! क्लिनिक में कब आऊं ? हां शाम में पहुंचूंगी—हां हां ज़रूर आऊंगी। हां हां, यही री।

(टेलीफ़ोन रख देती है। मेरी के चेहरे पर एक विचित्र सी मुस्कराहट है। वह धीरे धीरे बेला के बालों में कंघी करती है)।

चौथा दृश्य

भूसा राम तूसा राम फूसा राम हाल (यह सारा नाम इसी हाल का है) को एक अमीर सिंधी ने बनवाया था जो अपने समय का एक त बड़ा सरकारी ठेकेदार था। यह ठेकेदारी उनके खानदान में तीन पीढ़ियों से चली आ रही है। पहले केवल भूसा राम था जो P.W.D. का एक मामूली सा कांट्रेक्टर था, फिर उसका बेटा तूसा राम आया जिसने कराची में सरकारी इमारतों के बहुत से ठेके प्राप्त कर लिये। फिर उसका बेटा फूसा राम आया जिसने सक्खर के पुल के लिये सीमैंट सप्लाई करने का ठेका लिया। उसके बाद देश का बटवारा हो गया और भूसाराम, तूसाराम, फूसाराम तीनों इधर भारत में चले आये। यहाँ उन्होंने अपना वही पुराना व्यापार जगह जगह चला रखा है। यह हाल उसी खानदान ने बेचारे सिंधी लोगों के व्याह शादी के लिए बनवाया है। यह हाल अब पब्लिक प्रापर्टी है और इसका बाकायदा ट्रस्ट है जिसके तीन मैम्बर हैं (१) भूसाराम, (२) तूसाराम और (३) फूसाराम। इस हाल की दीवारों पर भूसाराम, तूसाराम, फूसाराम के चित्रों के साथ साथ श्री लक्ष्मी देवी, श्री महादेव, श्री कृष्ण, महात्मा बुद्ध, महात्मा गांधी, पण्डित जवाहर लाल, सरदार पटेल, श्री खेर, जयरामदास दौलतराम और शिकारपुर के प्रसिद्ध योगी सांई मंगा के चित्र लटक रहे हैं। आज हाल में पंजाबी और सिंधी शरणार्थियों का जल्सा है। हाल खचाखच भरा है क्योंकि आज मिस बाटलीवाला भाषण देंगी। जब पर्दा उठता है तो रिफ्यूजी एसोसियेशन

का सैक्रेट्री ठंगाराम माइक के सामने भाषण देने लगता है ।

ठंगाराम—भाइयो और बहनो ! अब आप के सामने मैं बेला बाटलीवाला, जिन्होंने देश और जाति की सेवा करते हुए और विशेष रूप से हम निर्धनों के दुख का अनुमान करते हुए हमारे फंड में दो हज़ार का चन्दा दिया है—(तालियां)

मेरे भाइयो और बहनो ! अब आप मिस बाटली वाला का भाषण सुनेंगे । आइये बहिन जी—

(तालियां)

बेला—मेरे रिफ्यूजी भाइयो और बहनो ! मुझे आप लोगों को यहां देख कर बड़ी प्रसन्नता हो रही है (तालियां) क्योंकि अगर आप लोग इस तरह हमारे पास न आते तो हम लोग आप को कैसे देख सकते थे (तालियां) । आप ने खाने की शिकायत की है, यह शिकायत अक्सर मुझे भी होती है । जब मैं अधिक खा जाती हूं तो मुझे बदहज़मी हो जाती है । मेरा ख्याल है अगर आप लोग केवल एक बार खाना खायें तो बहुत अच्छा होगा (तालियां) कपड़े के बारे में भी अधिक नहीं सोचना चाहिये । भगवान ने मनुष्य को नंगा पैदा किया है । यदि उसने हमें कपड़े देने होते तो हमें कभी नंगा पैदा न करता (तालियां) । इस के अतिरिक्त जहां तक औरतों का सम्बन्ध है, मैं दावे से कहती हूं कि आजकल कम कपड़ा पहनना बल्कि यदि हो सके तो बिल्कुल न पहनना फैशन बन चुका है । जब मैं तैरने के लिए जाती हूं तो अक्सर छोटा सा कपड़ा पहन लेती हूं, फिर डाक्टरों ने कहा है कि सूरज की किरणों को सीधे अपने शरीर से छूने देना चाहिये । इस से आदमी की सेहत मजबूत होती है और वह बहुत से रोगों से बचा रहता है (तालियां) । आप को अपना पेट पालने का दुख है ! लेकिन मैं कहती हूं कि यह दुख बेकार है क्योंकि आदमी का पेट [illegible] जाता है, और पेट बेकार है, इस का फिक्र ही क्या करना ? आप ही देखिये मैं भी इस तरह से रहती हूं, [illegible] और [illegible]

दूसरे शहर में चली जाऊँ तो वही शहर मेरा अपना हो जायेगा। यही हाल आप का भी है (तालियां)। मैं पूछती हूं इस देश का रहने वाला कौन है? पहले इस देश में कौन रहते थे—असली निवासी! फिर द्राविड़ आये, फिर आर्य फिर मुसलमान आये, अंग्रेज़ आये और आखिर में रिफ्यूजी। अब यह देश आपका है और आप इस देश के हैं। इसलिए आप को कोई दुख न होना चाहिये और सदा प्रसन्न रहना चाहिये (तालियां)। बस अब मैं समाप्त करती हूँ क्योंकि मुझे कुछ जाना है (ज़ोर ज़ोर से तालियां)।

एक रिफ्यूजी—मिस बाटली वाला जिन्दाबाद!

दूसरा रिफ्यूजी—कमाल कर दिया है। सारी रिफ्यूजी प्राबलम ही हल कर के रख दी है।

तीसरा रिफ्यूजी—अरे इन्हीं लोगों के दम ही से तो भारत का नाम चमक रहा है।

(लोग बेला के गिर्द हजूम की सूरत में खड़े हैं। बड़ी कठिनता से सैक्रेट्री साहब और अन्य लोग मिस बेला के लिए रास्ता बनाते हैं। हाल से बाहर निकलते हुए दरवाज़े के निकट मिस बेला को एक फोटोग्राफ़र मिल जाता है। चान्द्रक का चेहरा पटैटो चिप्स की तरह सूखा है। आवाज़ में आंसुओं की नमी है और जेब खाली है।)

चान्द्रक—मिस बाटलीवाला ज़रा इधर आइये। एक फोटो हो जाये।

बेला—अरे भई चान्द्रक! कहाँ रहते हो? नज़र ही नहीं आते।

चान्द्रक—कैसे नज़र आऊं, मिस बेला! आपको समय ही कहां मिलता है नज़र घुमाने का। सेवक एक मामूली फोटोग्राफ़र है और आप...हाई सुसाइटी की तितली।

बेला—क्यों लज्जित करते हो चान्द्रक! तुम नहीं जानते, मेरे जीवन में कितना सूनापन है। मैं ऊपर से प्रसन्न नज़र आती हूं लेकिन

मेरे दिल में...मेरे दिल में एक अजीब सी थकन और अन्धकार और एकान्त है, चान्द्रक डार्लिंग ! ज़रा अच्छा सा फोटो लेना।

चान्द्रक—(Click) हो गया। वह पोज़ लिया है कि अपने रिसाले के पहले पृष्ठ पर आयेगा।

बेला—पहले पृष्ठ पर ? सच !

चान्द्रक—पहले कभी झूठ कहा है ?

बेला—नहीं चान्द्रक, आओ तुम्हें कहां जाना है ? गाड़ी में छोड़ दूंगी।

चान्द्रक—सदा गाड़ी में बिठा कर छोड़ देती हो। बेला, बेला सच कहना मुझ से अच्छे फोटो तुम्हारे जीवन में किसने लिये हैं ?

बेला—नहीं चान्द्रक, तुम्हारे चित्रों में मैं आकाश की अप्सरा मालूम होती हूँ।

चान्द्रक—यह मेरे दिल का सपना है रानी, मेरी आत्मा का प्रतिबिम्ब है, मेरी भावना की सुगन्ध है, बेला, बेला, कभी तुम मेरी हो सकती हो ? आकाश से उतर कर कभी धरती पर आ सकती हो—जहां चान्द्रक है और उसका मिट्टी का घरौंदा है।

बेला—और नाइट्रेट सॉल्यूशन की बू है। नहीं चान्द्रक तुम आकाश ही में उड़ते रहो तो अच्छा है। तुम धरती पर आ जाते हो, तो बहुत घटिया मालूम होते हो। चान्द्रक, बुरा न मानना। बेला से प्रेम करना इतना आसान नहीं है। सोचो तो, मैंने पिछले पाँच साल से एक बार भी ज़मीन पर क़दम नहीं रखा। बिस्तर से गाड़ी और गाड़ी से फिर बिस्तर में। और तुम से [illegible] तो मैं फोटो खींचने के उस बल्ब की तरह हूँ जो आँखों को एक बार प्रकाश देकर सदा के लिए बुझ जाता है। मैं इससे [illegible] और नहीं चाहती।

चान्द्रक—मैं बिल्कुल [illegible] बेला ! तुम [illegible] हो, इसीलिए [illegible]।

वेला—एक रुपया, एक फूल . ...हा......हा ।

चान्दक—अच्छे लोगों में यही कमज़ोरी होती है।

वेला—वे हमेशा यह समझते हैं कि फूल रुपयों से अच्छे होते हैं हालांकि फूल कभी रुपये को नहीं ख़रीद सकता लेकिन रुपया हमेशा फूल खरीद सकता है । लो, गाड़ी से उतर जाओ । अब तुम्हारा घर आ गया ।

(मोटर रुक जाती है और फिर स्टार्ट हो जाती है ।)

पांचवां दृश्य

वेला का बाथरूम । एक अच्छा तगड़ा, चौड़ी चकली छाती वाला, सुन्दर नौजवान, जो सुन्दर से अधिक मज़बूत है । हाथ टब में डाले टूटियां ठीक कर रहा है । उसने अपना जूता एक मख़मली कुर्सी पर टिका रखा है और एक तिपाई पर से इत्र की शीशियां हटा कर उस पर अपने औज़ार रख छोड़े हैं । वह एक ख़ाकी मैली कमीज़ पहने हुये है जिसकी छाती के बटन खुले हैं, जिसमें उसका बालों भरा सीना नज़र आरहा है । उसने एक ख़ाकी रङ्ग की भूरे चकत्तों वाली पतलून पहन रखी है जिसकी मोहरियां उसने ऊपर चढ़ा रखी हैं । वह काम करता और गाता जाता है ।

बाथरूम से शयनगृह का जो एक भाग दिखाई दे रहा है उसमें मेरी झाड़ने-पोछने में लगी हुई है । इतने में वेला एक बढ़िया रेशमी गाऊन पहने बाहर से आती है और आवाज़ सुन कर ठिठक जाती है और मेरी की ओर मुड़ती है । बाथरूम में काम करने वाला अपनी धुन में गाता रहता है ।

पलम्बर—"बदल कर फ़क़ीरों का हम भेष गालिब,
तमाशाए अहले करम देखते हैं।

बेला—मेरी, मेरी, यह कौन गा रहा है?

मेरी—कम्पनी का आदमी है। बाथ-टब ठीक कर रहा है।

पलम्बर—किसी काफ़िर की शोख़ी फूट सच खुलने नहीं देती,
क़िया जब वादा दुश्मन से कसम खाई मेरे सर की।

बेला—मेरी, मेरी, इसे कहो गाना बन्द करदे।

मेरी—बहुत अच्छा सरकार।

पलम्बर—कि वह शोख़ जिस घर में मेहमान होगा।
क़यामत का उस घर में सामान होगा॥

मेरी पलम्बर की ओर, बाथरूम की तरफ मुड़ती है कि बेला उसे हाथ के संकेत से रोक देती है और स्वयं बाथरूम के दरवाज़े पर जा कर उससे कहती है—

बेला—मैं तुम से कहती हूं गाना बन्द करदो।

पलम्बर—गाना नहीं बन्द होगा जी।

बेला—जानते हो मैं कौन हूं?

पलम्बर—तुम्हारी बदतमीज़ी कह रही है कि तुम इस घर की मालकिन हो।

बेला—मैं यह अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकती।

पलम्बर—अच्छा तो मैं जाता हूं। यह टब पड़ा सड़ता रहेगा और पानी बाथ से निकल निकल कर [illegible] सब कमरों को [illegible] देगा।

बेला—ओह! नहीं नहीं, ठहरो ठहरो पलम्बर! अच्छा तुम गा सकते हो।

पलम्बर—(गुन गुन करता है)

बेला—अब तुम गाते क्यों नहीं?

पलम्बर—[illegible] नहीं।

बेला—अजीब आदमी हो।

पलम्बर—हूं ! (ठक ठक)

बेला—तुम क्या कमा लेते हो महीने में ?

पलम्बर—यहां महीने का हिसाब नहीं, रोज़ का हिसाब है ।

बेला—रोज़ क्या मिलता है तुम्हें ?

पलम्बर—एक रुपया ।

बेला—बस एक रुपया ?

पलम्बर—कभी तुम्हारे जैसी मूर्ख औरतें दो रुपये भी दे देती हैं। उस दिन सिनेमा देख लेता हूं । लेकिन अपने साथ नहीं ले जाता ।

बेला—अहमक ! पागल ! गधा !

पलम्बर—लुच्ची, लफङ्गी, बदमाश !

बेला—यह तुम किसे गालियां दे रहे हो ?

पलम्बर—ज़ाहिर है मैं इस बाथ-टब को तो गालियां नहीं दे रहा।

बेला—हो........होश ! मेरी, मेरी निकालो इस आदमी को इसी दम।

पलम्बर—निकालने की ज़रूरत नहीं । मैं स्वयं ही चला जाता हूं। अब तो यह नल भी फव्वारे की तरह चल रहा है और दो मिनट में बाथ-रूम डूब जायेगा। फिर टाटा.....

बेला—नहीं नहीं, ठहरो ठहरो। मुझे तुम से मग्ज़ मारने की क्या ज़रूरत है ?

[बेला क्रोध में आकर और पांव पटक कर वहां से घूम जाती है और अपने कमरे में जाकर एक कुरसी पर बैठ कर कोई रिसाला खोलने और बन्द करने लगती है। लेकिन उसे चैन नहीं पड़ता क्योंकि पलम्बर और भी ज़ोरों से गा रहा है।]

पलम्बर—नींद उसकी है दिमाग उसका है रातें उसकी हैं।
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ू पर परेशां हो गईं !

(ठक ठक करके काम करता है, फिर गाता है)

मेरे काम आ गईं आख़िरश यही काविशें यही मंज़िलें।

जो बहुत बढ़ी मेरी मंज़िलें तो क़दम के पार निकल गये।

[बेला उसकी आवाज़ सुनती रहती है। धीरे धीरे उसके चेहरे के तेवर बदल जाते हैं और फिर चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती है और वह धीरे से अपनी कुरसी से उठ कर फिर बाथ-रूम के दरवाज़े पर आ खड़ी होती है। पलम्बर काम करते हुए पहले जैसे ढङ्ग में उसकी बातों का उत्तर देता है।]

बेला—वाह! तुम अच्छा गा लेते हो।

पलम्बर—धन्यवाद!

बेला—तुम्हारा नाम?

पलम्बर—आदमी।

बेला—कौनसा आदमी?

पलम्बर—एक आदमी।

बेला—कौन सा एक आदमी?

पलम्बर—एक आदमी जो बाथ-रूम मरम्मत करता है।

बेला—यह नाम नहीं है।

पलम्बर—मेरा यही नाम है।

बेला—तुम्हारी बीबी तुम्हें इसी नाम से पुकारती है!

पलम्बर—मेरी कोई बीबी नहीं।

बेला—क्यों? इतना बड़ा, इतना खूबसूरत जवान है। लेकिन क्या तुम्हें किसी से प्रेम नहीं हुआ?

पलम्बर—क्यों नहीं। सबसे पहले तो मुझे अपने काम से प्रेम है - मैं तो [illegible] है, जिसकी [illegible] हुई है और [illegible] हुआ है। मुझे अपने काम से प्रेम है। फिर मुझे इस [illegible] से प्रेम है जो मेरा [illegible] है। [illegible] एक [illegible] है और [illegible]

गले में रस आता है और मेहनत का राग सुनाई देता है और फिर मुझे एक लड़की से प्रेम है। उस लड़की को मैंने केवल एक बार देखा है लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरे दिल की रानी है, मेरे सपनों की रानी है और संसार की सब से सुन्दर औरत है।

बेला—कौन है वह ?

पलम्बर—वह एक अन्धी लड़की है और बड़े बाज़ार में फूल बेचती है। मैं जानता हूं मुझे उसीसे ब्याह करना है। लेकिन मैं अभी उससे ब्याह नहीं कर सकता क्योंकि मैं केवल एक रुपया रोज़ कमाता हूं और एक रुपया रोज़ से दो आदमी जीवित नहीं रह सकते।

बेला—अगर तुम्हें कोई बहुत से रुपये दे दे तो क्या तुम उसे भूल सकते हो ?

पलम्बर—क्या मतलब है तुम्हारा ?

बेला—सुनो ! अगर तुम्हें कोई इतने सारे रुपये दे दे जितने तुम्हारे बदन में सांस हैं, अगर कोई तुम्हारे क़दमों पर सिर रख दे और अपने ओठों से तुम्हारे पांव चूम ले, अगर कोई अपनी जलती हुई गुलाबी उँगलियां तुम्हारे गालों पर रख दे और तुम्हारी छाती को अपने सांस की महक से बोझल कर दे, अगर कोई लड़खड़ा कर तुम्हारी गोद में गिर जाये और तुम्हारे शरीर के ऊपर रेशम लाद दे तो तुम क्या कहोगे ?

पलम्बर—मैं उससे कहूँगा—मुझे बहुत दुख है...मैं...(अपना सामान इकट्ठा करते हुये) लेकिन अब आपका बाथ-टब ठीक हो चुका। अब मैं अन्धी लड़की के पास जाता हूं क्योंकि तुम खाली एक रुपया हो और वह मेहनत का एक फूल है।

(सामान उठाकर अपने कन्धे पर डाल लेता है और मखमली कुरसी से अपना जूता उठा कर उस पर फूंक मारता है जैसे उस पर गर्द जम गई हो। फिर उसे अपने पाँव में पहिन कर वहाँ से चला जाता है।]

बेला—ठहरो ठहरो !

(पलभर रुक कर देखता है, फिर दरवाज़े से बाहर निकल जाता है। मेरी उसी समय भीतर आकर कहती है)

मेरी—मिस साहब ! मिस साहब ! जमशेद जी का टेलीफोन है।

(बेला देर तक चुपचाप निश्चेष्ट खड़ी रहती है। उसके चेहरे का रङ्ग उड़ गया है।)

बेला—उससे कह दो, बेला मर गई—बेला मर गई।

(मेरी टेलीफ़ोन रख देती है। बेला शृंगार मेज़ पर सिर पटक कर सिसकियां लेने लगती है। टेलीफ़ोन की घन्टी फिर बज उठती है और बजती ही चली जाती है)

: १३ :

आंधी

परदेसी ने आकाश की ओर आंख उठाई। आकाश के गहरे नीले समुद्र में बादलों के स्वच्छ श्वेत टुकड़े बरफ़ के बड़े बड़े टीलों की तरह तैर रहे थे और इनके पास चीलें मंडरा रही थीं। चीलें ?......तब तो जरूर कोई गांव पास ही होगा। उसने हांपकर अपने माथे पर से पसीना पोंछा। चीलें इन्सानी बस्तियों की सूचक होती हैं। परदेसी ने मन में सोचा—गिद्ध, कुत्ते, चीलें, मनुष्य—इन प्राणियों के गुण-कर्म-स्वभाव एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं। इस तरह सोचता हुआ वह बहुत-सा रास्ता पार कर गया। कई जगह सीधी ढलानें थीं, कई जगह ऊँची घाटियां थीं, जिनके आंचल में खड़े होकर ऐसा मालूम होता था कि इनके शिखर पर बादलों के महल बने हैं। लेकिन जब वह शिखर पर पहुंचा तो बादलों का महल ऊपर उठकर आकाश में लीन हो जाता। इस संसार में कितना धोखा है ?—परदेसी के कल्पना-लोक में नये-नये चित्र बनने लगे। सफ़ेद, झिलमिल, चमकते हुए लाखों ताजमहल थे और चारों ओर जमना का नीला पानी फैला हुआ था। उसने सोचा इन संगमरमरी महलों को किस शाहजहां ने बनाया है ? और किस प्रेमिका की याद में ?...

इसी तरह अपने मन से बातें करता हुआ परदेसी बहुत दूर निकल गया। अब हवा में कुछ ठंडक भर गई थी, और सूरज पश्चिम की ओर

दृष्टि देखती थीं। कह रही थी "करले दो दिन और खेल कूद फिर वह दिन भी आयगा जब तेरी पिछली टांगों को बांध कर तेरा दूध दुहा जायगा। तब तेरी चाल भी हमारी तरह बेढंगी होकर रह जायगी। अब भले मस्त हिरणी की तरह कुलांचे मार ले।"

नेलती उछलती हुई परदेसी के पास आ गई। उसके गले में बन्धी हुई घंटियों की रुनझुन उसके नाचते हुए कदमों के लिये घुंघरुओं का काम दे रही थी। अपने अगले पांव टीले पर टेककर वह परदेसी के पांव सूंघने लगी। मानो जंगल में घास के पूले को सूंघ रही हो।

"नेलती, हा हा!" चरवाही ने अपनी पतली आवाज़ में चिल्ला कर कहा। उसकी आवाज़ में भी ऐक घंटी की पतली गूंज थी। लेकिन, नेलती ने उस आवाज़ की कोई परवाह न की। शायद खुशी से, या शरारत से। बेचारी चरवाही को तंग करने के लिए वह परदेसी का बूट चाटने लगी।

चरवाही फिर चिल्लाई "नेलती—हा-हा-हुश, नेलती हो।"

यह चिल्लाती चिल्लाती चरवाही परदेसी के बहुत पास आगई और डंडे से नेलती को सज़ा देने लगी। बेचारी तंग आ गई थी। चेहरे पर पसीने की बून्दें थीं और गाल गुस्से से तमतमाए हुए थे। नेलती को दूर हटा कर उसने निडर आंखों से परदेसी को देखा। और पहाड़ी भाषा में बोली :—

"राही! को को? (राही! किधर जा रहे हो?)

परदेसी मुस्करा दिया और कहने लगा "यह नेलती कितनी शरारती है।"

चरवाही के चेहरे से रूखापन उतर गया। वह नेलती की ओर, जो मार खाकर भी नाचती कूदती जा रही थी, प्यारी आंखों से देखती हुई बोली—

"अभी यह तीन साल की भी नहीं है।"

"हूँ........और तुम्हारी उम्र कितनी है?"

चरवाही ने एक क्षण के लिए परदेसी की ओर आश्चर्य भरी आंखों से देखा। दूसरे क्षण उसका चेहरा लाज से लाल होगया। उसने मुंह फेर लिया और रेवड़ के साथ साथ चलने लगी।

परदेसी टीले से उतर कर चरवाही के साथ हो लिया। और उस की छड़ी छीन कर कहने लगा :—

"मालूम होता है आज तुम्हारा बड़ा भाई तुम्हारे साथ नहीं आया। तभी तो रेवड़ चराने में तुम्हें इतनी परेशानी हो रही है। अब देखो मैं रेवड़ संभाल लेता हूँ और तुम एक छोटी सीधी लड़की की तरह मेरे पीछे चली आओ। मैं थका हुआ हूं। बहुत दूर जाना है। सूरज डूबने को है। कितनी दूर है तुम्हारा गांव ? यह भला हम वापिस किधर जा रहे हैं ?"

चरवाही ने हंसते हुए कहा : "गांव तो तुम पीछे छोड़ आये थे। इस लिए वापिस जा रहे हो। वह देखो, उस घाटी के पास (उंगली उठाकर) वह रहा हमारा गांव।"

"क्या नाम है ?"

चरवाही ने जल्दी से कहा : "सारद"।

परदेसी ने चरवाही की ओर देखकर कहा :— "मैं कहने को था कि तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा ?.........मेरा नाम आंगी है।" आंगी ने रुकते २ उत्तर दिया और पूछा "तुम कहां से आ रहे हो ?"

परदेसी ने कुछ सुना ही नहीं। ज़ोर ज़ोर से रेवड़ को आवाज़ देने में मगन हो गया : "हुश हा-हा, नेलवी हा-हा, बिली, ही ही।"

आंगी हंसते हंसते दोहरी होगई। वह सोचने लगी, यों तो मैं हंसते हंसते मर जाऊंगी, यह राही भी किता विचित्र है। फिर बोली... "हा-हा... .....तुम तो रेवड़ को भी काबू में नहीं रख सकते; इधर लाओ छड़ी।"

यह कहते हुए चरवाही ने हंसते हंसते परदेसी से छड़ी छीन ली।

परदेसी को सारद गांव बहुत पसन्द आया। यहां लगभग बीस-पचीस कच्चे घर थे जो खड़िया से पुते हुए थे और नाश्पाती, केले, सेव के वृक्षों से घिरे हुए थे। सेव के वृक्षों में फूल आए हुए थे। कच्ची, हरी नाश्पातियां वृक्षों की डालों पर लटक रही थीं। गांव के खेत मकई के पौदों से हरी मखमल की तरह बने हुए थे। घने झुरमुट के बीच एक झरना गुनगुनाता सा बह रहा था। उससे कुछ दूरी पर एक छोटा सा मैदान था। जिसके मध्य में चिनार का एक वृक्ष शाखायें फैलाये हुये खड़ा था। उसकी छाया इतनी लम्बी हो गई थी कि नीचे बहती हुई नदी के किनारे तक पहुंच रही थी। नदी एक पतली सी नागिन की तरह बल खाती हुई उत्तर-पूर्व के बर्फीले पहाड़ों से आ रही थी और डूबते हुए सूरज के पीछे पीछे भाग रही थी। जहां तक आंख देख सकती थी यह दिखाई देता था कि वह दो पहाड़ों के पतले किनारों से गुजरती हुई कहीं खो जाती थी। उसके परे परदेसी का देश था। वह वहां कब वापिस जायगा? क्या वह कभी वापिस जा सकेगा? यहां कितनी शान्ति है, आराम है।

अचानक उसकी आंखों के आगे रेलगाड़ी के घूमते हुये पहिये उछलने लगे। यह कैसा शोर है। मनुष्य सुनसान चुप्पी से इतना क्यों डरते हैं। शोर क्यों मचाते हैं। गला फाड़ फाड़ कर क्यों चिल्लाते हैं। यहां कितनी चुप्पी है, शान्ति है, विश्राम है। नीचे पगडन्डी पर नदी के किनारे आंगी किस लापरवाह हिरनी की तरह कदम रखती हुई आ रही थी। कन्धे पर पतली सी छड़ी थी। होंठों पर एक अर्थहीन सा गीत था।

परदेसी ने अपनी पुस्तक बन्द करदी। और आंगी की ओर देखते हुए सोचने लगा: "यदि वह चित्रकार होता तो कितना अच्छा होता, कितना सुन्दर चित्र है, कितना आकर्षक दृश्य। आंगी के हिलते हुये सुडौल और गठे हुए बाजू, उसकी कमर का सुन्दर गठन और उसकी लचक—कितनी मोहक है। वह चित्रकार नहीं तो मूर्त्तिकार ही होता।

दुनिया में किसी की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। नहीं तो वह ऐसी सुन्दर प्रतिमा तैयार करता कि यूनानी कलाकार भी दांतों तले उंगली दबाते।

इतने में आंगी ने उसे देख लिया। विचित्र बात है। वह क्यों ठिठक कर खड़ी हो गई है? उसके होठों का अर्थहीन गीत क्यों रुक गया है। वह छड़ी से ज़मीन पर क्या लिख रही है?—बेचारी अनपढ़ आंगी।

परदेसी ने ज़ोर से पुकारा "आंगी!"

आंगी ने ज़रूर सुना मगर जवाब नहीं दिया। वह अब ऊपर चढ़ने लगी। घाटी के घुमावदार रास्ते से गुजरती हुई उधर ही आने लगी। लेकिन उसकी चाल बदल गई है। बाहें अब उस बेपरवाही से नहीं हिल रहीं। गरदन एक ओर झुक गई है। यह एक नया चित्र है। इस चित्र का रंग नया है। इस गीत की लय अनोखी है।

आंगी घाटी पर चढ़ आई। यहां आकर वह परदेसी के पास बैठ गई, और छड़ी को हरी घास पर रखकर सुस्ताने लगी। परदेसी बड़े ध्यान से उसके केशों की उन लटों को देखने लगा जो आंगी के गालों पर उतर आई थीं। अचानक आंगी बोल उठी: "तुम वापिस कब जाओगे राही? तुम अपना नाम ही नहीं बताते तो मैं तुम्हें राही ही कहूँगी। ठीक है न?"

परदेसी ने पुस्तक के पन्ने पलटते हुए कहा "ठीक है, और राही इतना बुरा नाम भी नहीं। बात असल में यह है आंगी, कि मैं यहाँ अपना स्वास्थ्य सुधारने आया हूँ। जब सुधर जायगा, चला जाऊँगा।"

आंगी ने बड़ी नम्रता से पूछा—"किधर जाओगे?"

परदेसी ने बड़ी लापरवाही से दाहिना हाथ उठाते हुए कहा—"उधर जाऊँगा।"

"तुम कहाँ से आये हो?"

"इस बार परदेसी ने दूसरा हाथ उठाकर कहा : "इधर से आया हूं।"

आंगी की आंखों में विचित्र चमक भर गई। रुकते रुकते कहने लगी : "राही ! तुम कितने अजीब हो !"

राही दिल में सोचने लगा, क्या सचमुच मैं अजीब हूं ? क्या यह सारा दृश्य ही अजीब नहीं ? यह स्वप्न की सी सुनसान घाटियाँ, यह मौत की सी जिन्दगी, यह आंगी के गालों पर लहराती लटें, क्या यह सब अजीब नहीं ? आंगी का कुर्त्ता जगह जगह से फटा हुआ है। उसमें दर्जनों पैवन्द लगे हैं। लेकिन वह किस आन-बान से गरदन ऊँची किये नदी की ओर देख रही है। नदी का पानी भी उसकी आंखों की तरह नीला है। क्या यह अजीब बात नहीं ? आंगी के हाथ कितने पुष्ट दिखाई देते हैं ! उसकी लम्बी अंगुलियां हल के हत्थे पर दृढ़ता से जम जाती होंगी। उसकी कलाई ने शायद कभी चूड़ियों की झन्कार नहीं सुनी। कितनी अजीब बात है ? अपने चाकू से कलम घड़ने में मुझे जितना समय लगता है, आंगी उतने समय में आधे खेत की जुताई कर लेती होगी।

कई दिन बाद परदेसी की आंगी से भेंट हुई तो परदेसी ने कहा : "आंगी ! तुम्हें इतने दिनों से नहीं देखा।"

आंगी ने उत्तर दिया "अजीब बात है। मैं समझती हूँ कि तु·· इतने दिन कहीं लापता रहे। अब............... बहुत दिन हुए, तुमने अपनी तारोंवाली बन्सरी (वायलिन) नहीं सुनाई। अभी परसों की ही बात है, हम सब मैदान वाले वृक्ष के नीचे बैठे हुए फ़िरोज़ से अलगोजा सुन रहे थे। तुम्हें पता है न, वह अलगोजा बहुत अच्छा बजाता है। किरण कहने लगी "पता नहीं आजकल राही दिखाई नहीं देता। उससे उसकी तारोंवाली बन्सरी बजाने को कहते। क्यों ?" इतना कहकर आंगी ने परदेसी की ओर देखा।

परदेसी की उंगलियाँ बेचैन हो गईं। उसने अपना हाथ आंगी के

हाथ के इतना पास रख दिया कि एक की अंगुलियाँ दूसरे को छू रही थीं। धीमे से वह बोला : "हाँ, ठीक है। मैं आजकल लम्बी-लम्बी यात्रा करने के लिये गांव से बहुत दूर निकल जाता हूं। कभी कभी सनोबरों के उन घने जंगलों में भी चला जाता हूं।"

"तुम्हारा मन अकेले कैसे लगता होगा?"

"अकेला तो नहीं होता। कभी कोई पुस्तक ले जाता हूँ; कभी कुछ लिखता हूं, कभी अपनी तारोंवाली बन्सरी बजाता हूँ।"

आंगी ने चकित-सी होकर परदेसी की ओर देखा और कहा : "राही! तुम कितने अजीब हो!"

उसकी सांस में शहद की सी मिठास थी।

बरसात के अन्तिम दिनों में मकई की फसल पक गई। गांव वालों ने मैदान वाले वृक्ष के आस-पास बड़े बड़े खलिहान लगाये। इन्हें गोबर से लीप दिया। फिर उन पर खड़िया मिट्टी फेर दी। फिर उनमें मकई के भुट्टों के अंबार जमा किये। उन पर बैलों को चक्कर दे दे कर चलाया, जिससे दाने भुट्टों से जुदा हो जायें। कुछ भुट्टे तो इस तरह बिल्कुल साफ हो गये, लेकिन बहुत से भुट्टे बड़े जिद्दी निकले। बैलों के पाँव तले रौंदे जाकर भी उन्होंने मकई के दानों को अपने से अलहदा नहीं किया। फिर सारे गाँव वालों की टोलियाँ बनीं। लोग चांदनी रातों को इकट्ठे होकर उन भुट्टों से दाने अलग करने लगे। वह समय भी विचित्र होता। नीचे बहती हुई नदी का धीमा-सा शोर सुनाई देता, वृक्ष की शाखों में चांद अटक जाता और उस उदास गीत को सुनता रहता जो नौजवान किसान और उनकी मां-बहनें गा रही होतीं।

गाते गाते वे अचानक चुप हो जाते। उस चुप्पी में भी सब मिल कर मकई के दानों को अलग करना जारी रखते। हवा के हल्के-हल्के झोंके आते और वृक्ष सांस लेता हुआ मालूम होता। आग सेंकता हुआ कोई बूढ़ा किसान कह उठता "और गाओ बेटो, और गाओ।" फिर

खुद ही कोई पुराना गीत शुरू कर देता।

उसे अपने अन्तिम दिनों में जीवन के मधुर दिनों की याद आ रही है। पीले पीले दहकते अंगारों की चमक उसकी अश्रुभरी आंखों में कांप कांप जाती है। गाते गाते गीत के शब्द उसके मुख में लड़खड़ा जाते हैं। वह चुप हो जाता है, और अब आग के दहकते कोयलों पर मकई का भुट्टा भूनने लगता है। नौजवान लड़कियां आपस में हास-उपहास करती हुई अचानक हँस पड़ती हैं। नौजवान गडरिये उन्हें कनखियों से देख कर मुस्कराते हैं। फिर कोई वियोग का गीत हवा में गूँज उठता है। नौजवान लड़कियों की पतली आवाज़ें भी इसमें मिल जाती हैं। मालूम होता है किसी बड़ी समाध पर बैठे हुए अपने प्रेमी की याद में दीपक जला रहे हैं। मकई के दाने किसी माला के अगनित दाने हैं। बूढ़ा किसान बूढ़ा पुजारी है। उस दीपक में अबीर जल रहा है जिसका धूँआ उठकर सारी समाध को सुवासित कर रहा है।

सारद गांव वाले परदेसी को अपना प्रिय अतिथि और भाई समझते और उसे अपने उत्सवों में बुलाते। भोले भाले किसान, अल्हड़ चरवाहियां, नन्हे-नन्हे बच्चे उसके चारों ओर जमा हो जाते और कहते "परदेसी! अपनी तारों वाली बन्सरी सुनाओ।" आंगी उसके कन्धों पर अपनी बांह टेक देती और दूसरे हाथ से उसकी अंगुलियों में मिजराब को पकड़ा कर कहती, "लो बजाओ राही! अपनी तारों वाली बन्सरी।" या फिर खलिहानों की लम्बी लम्बी छाया में कोई कहानी सुनने की मांग करता; उस दुनिया की कहानी जहां लम्बे लम्बे मैदान हैं, बड़ी बड़ी नदियां हैं, मीलों तक फैले हुए शहर हैं; जहां लोहे के तारों पर लकड़ी के मकान एक पंक्ति में भागे जाते हैं; कहीं से कोई बटन दबाता है और लाखों बत्तियां जगमगा उठती हैं, आसमान पर उड़न-खटोले घूम रहे हैं और ज़मीन पर बाजारों में वे परियां तैर रही हैं जिनके कपड़े तितलियों के पंखों से बनाये गये हैं।

इस तरह मकई के खलिहानों में कई चांदनी रातें गुजर गईं। एक

रात परदेसी ने फ़िरोज़ का अलगोजा सुनते हुए अनुभव किया कि आंगी वहां नहीं है। फिर उसने मकई के दानों को भुट्टों से अलग करते हुए इधर-उधर देखा लेकिन आंगी कहीं दिखाई न दी। तब परदेसी ने एक ऐसी हृदय-वेधक कहानी सुनाई जो शहरी जीवन की थी। उस की आंखें आंगी को खोजती रहीं। पर, आंगी दिखाई न दी। उसके बाद उसने वायलिन पर एक दुखभरा गीत छेड़ा। गांववाले उसके चारों ओर जमा हो गये। लेकिन उस भीड़ में भी उसकी आंखें आंगी को ही खोज रही थी। लेकिन आंगी वहां नहीं थी। नहीं आई।

अन्त में परदेसी ने पूछ ही लिया।

एक नौजवान किसान ने बेपरवाही से कहा "वह खलियान के दूसरी ओर बैठी है। अभी कुछ देर हुई अपनी सहेलियों के बीच बैठी गा रही थी कि फ़िरोज़ की बहन ने उसे न जाने क्या कहा कि वह उठ कर चली गई, और झोली में बहुत से भुट्टे भर कर लेगई। अब अकेली बैठी दाने अलग कर रही होगी। कौन मनाता फिरे उसे?"

"तू क्यों नहीं जाकर मना लाती उसे?"

किरण हंस पड़ी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

परदेसी ने देखा, खलियान के दूसरी ओर मकई के भुट्टे ज़मीन पर पड़े हैं और उनके पास खलिहान का सहारा लिये हुए आंगी लेटी है।

"आंगी!"

"आंगी!!"

"आंगी!!!"

परदेसी आंगी पर झुक गया। उसने आंगी के सिर को अपनी बाहों में ले लिया। और पूछा: "क्या बात है आंगी?"

आंगी उठ बैठी। उसने धीमे से अपने आप को परदेसी की बाहों से जुदा किया और मकई के दाने अलग करने लगी।

अन्त में उसने दबे स्वर में कहा "परदेसी मुझे यहां से ले चलो।"

यह कहकर उसने सिर झुका लिया और चुपचाप रोने लगी।

परदेसी चुपचाप मकई के दाने अलग करता रहा। उसने आंगी के आंसू नहीं पोंछे, उसे प्यार नहीं किया। अचानक एक पत्ती अपने काले पंख फैलाये हुए तीर की तरह सामने से निकल गया। खलियान के ऊपर दो-तीन तारे चमक रहे थे। मानो आंगी के आंसू हों। खलियान के दूसरी ओर औरतें नई दुलहन के ससुराल जाते समय का गीत गा रही थीं। परदेसी की आंखें पहाड़ों से दूर, सनोबरों के जंगल को चीर कर उन मैदानों को ढूंढ़ रही थी, जहां उसका देश था। उस की आंखों में रेलगाड़ी के पहिये उछलने लगे।

परदेसी ने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह अपनी दुनिया में, अपनी सभ्यता की दुनिया में लौट आया। कभी वह कल्पना करता है कि उसने भूल की। कभी कभी अपने मित्रों की मण्डली में बैठे हुए उसके कानों में वही शब्द गूँजने लगते हैं "राही! तुम कितने अजीब हो?" उसके चेहरे से मुस्कराहट मिट जाती है और वह सोचता है, शायद किसी नीले झरने पर रेवड़ को पानी पिलाते हुए एक ग़रीब लड़की उसकी प्रतीक्षा कर रही है। उसके पांव नंगे हैं, उसकी आंखें उदास हैं, उसके बालों में सेब के फूलों का गुच्छा है.........!

"आंगी!"

: १४ :

लाहौर से बहराम गिल तक

मैं और कासिम मिशन कालिज की लाइब्रेरी में बैठे चीनी चित्रकला के सम्बन्ध में एक पुस्तक देख रहे थे। पुस्तक तो क्या देख रहे थे चित्रों पर उलटी सीधी सी निगाहें डाल रहे थे और साथ ही बातें भी कर रहे थे। बातचीत धीमे-धीमे हो रही थी। फिर भी लाइब्रेरी के विस्तृत सुनसान में शहद की मक्खियों के भिनभिनाने की सी गूंज पैदा हो गई थी। बातचीत के विषय बड़े मनोरंजक थे; सिनेमा की अभिनेत्रियां, किचन का टमाटर, पनीर, सुन्दर साड़ियां, प्रोफेसरों की मूर्खतायें, आदि आदि।

पुस्तक के पन्ने उलटते-उलटते 'ली-चांग' का प्रसिद्ध चित्र 'माधुर्य' सामने आ गया। वही टेढ़ी-तिरछी आंखें 'चगताई' चित्रकला से मिलते-जुलते मद्धम रंग, झील के नीले पानी में पश्चिमी पहाड़ियों की हरी-हरी चोटियां और उन पर फैले हुए, उठे हुए चमकते हुए नारंगी बादलों की चादर—'ली-चांग' की चित्रकला सचमुच दिव्य आनन्द देने वाली है।

कासिम ने अपनी लम्बी बेचैन पतली अंगुलियां धीमे से चित्र पर रख दीं और फिर मुझे कहने लगा : "मैं परसों शिमला जा रहा हूँ। काज़मी की कोठी खाली पड़ी है। तुम भी चलो।"

मैंने सिर हिला कर इन्कार कर दिया और कहा "इस बार तो ऐसा मालूम होता है कि मैं कहीं बाहर न जा सकूंगा।"

कासिम ने पूछा : "वह क्यों ?"

मैंने कहा "क्या कहूं, कुछ हालत ही ऐसी है।"

कासिम चुप हो गया और 'ली-वांग' के चित्र को एकटक देखने लगा। शायद उसे चीनी चित्रकला में शिमला के मनोहर दृश्यों की छवि दिखाई दे रही हो।

किन्तु, हालत बदलते क्या देर लगती है। मैं लाइब्रेरी से उठकर घर आया तो मुकुन्द (मेरे नौकर) ने एक तार मेरे हाथ में दिया। लिफ़ाफ़ा खोलकर मैंने पढ़ा। लिखा था :—

"मेरी शादी जून २० को है जल्दी पहुंचो"

"गुरुबक्श"

देर से मुझे गुरुबक्श का कोई पत्र नहीं मिला था। मैं सोच रहा था कि इस भूलने को सुस्ती कहूं या उसकी उदासीनता। आज मालूम हुआ पत्र न लिख सकने के और भी बहुत कारण हो सकते हैं; जैसे प्रेम, शादी या मृत्यु।

गुरुबक्श मेरा अन्तरंग मित्र है। स्कूल की शरारतों में हम दोनों ने एक सा भाग लिया था और प्राय: एक ही बैंच पर बैठे थे। दो भोले दिलों की मित्रता के लिये इससे अधिक गहरी और कौन सी नींव हो सकती है। अब, यद्यपि अवस्थाओं ने गुरुबक्श को मुझ से अलग करके लाहौर से दूर काश्मीर के एक छोटे से गांव में फेंक दिया है, फिर भी इन संसारी मजबूरियों का असर हमारी मित्रता पर नहीं पड़ा। वह पहले जैसी अब भी बनी है।

गुरुबक्श मीरपुर में रूसी पैट्रौल की एजन्सी का मालिक है। कई बार उसने मीरपुर आने को लिखा है। लेकिन हर बार कई कारणों से मैं मीरपुर नहीं जा सका और अब मैं तार हाथ में लिये सोच रहा था कि मुझे गुरुबक्श की शादी पर जाना चाहिये या नहीं। आख़िर गुरुबक्श मित्र है और मित्र की शादी या मौत का अवसर जीवन में एक बार ही आता है, लेकिन.........दूसरी ओर शिमला का निमन्त्रण

है। शिमला और काश्मीर में वही भेद है जो 'ली-बांग' के चित्र में और मिशन कालेज की लाइब्रेरी में है। और फिर यह तो साफ ही है कि अगर मैं मीरपुर चला जाऊं तो परसों शिमला नहीं जा सकता और शिमला चला जाऊं तो गुरुबक्श की शादी पर पहुँचने से रह जाता हूं।

इस दुविधा का अन्त करने के लिए मुझे लाटरी का आश्रय लेना पड़ा। जेब से पैसा निकाला। मन में सोचा 'शाही चेहरा' ऊपर आया तो शादी पर जाऊंगा। दूसरे ही क्षण पैसे का शाही चेहरा मेरी ओर मुस्करा रहा था।

बहुत अच्छा; शिमला न सही मीरपुर ही सही। "तुझे ढूंढ ही लेंगे कहीं न कहीं।"

रात को साढ़े नौ बजे की गाड़ी पर सवार हुआ और दूसरे दिन सुबह मीरपुर पहुँच गया। मीरपुर का यह छोटा सा शहर काश्मीर रियासत के राज्य में है। लेकिन अगर यह काश्मीर में न होकर राजपूताने के किसी स्थान पर होता तो शायद अधिक उचित होता। इसकी गरम-सूखी हवायें, दहकती हुई धूप से जली पहाड़ियां इसे किसी रेगिस्तान का शहर बना रही थीं। न जाने गुरुबक्श को क्या सूझी थी कि इस सूखी जगह पर पेट्रोल की एजन्सी ली थी और इस रेगिस्तानी दुलहन को जीवन साथी बनाने का फैसला किया था।

रात को जब पहाड़ी गीतों और ढोलक के कोलाहल से आकाश भर गया तो मैंने गुरुबक्श से भी यही प्रश्न किया। उसने कहा "यह सब दिल का दोष है। इसे जो चाहे सज़ा दे दो।"

"खूब! तो फिर यह प्रेम परिणाम है?" गुरुबक्श मुस्करा कर चुप हो रहा।

आंगन में किसी लड़की ने नया गीत शुरू किया था। इसकी पहली टेक मुझे याद है।—

"इक पहली आ सावन दी,

कचरक डीक रखां माहिये दे आवन दी।"

सब फेर दिलां दे नी माहूये मैं नूं दस खां नी माहूये।

शादी के बाद मित्रों ने यह तय किया कि गुरुबक्श को 'हनीमून' मनाने का अवसर न दिया जाय, बल्कि चार-पांच मित्रों की टोली में उसे भी मिलाकर खूब इधर-उधर सैर की जाय।

जगदीश ने अपनी ऐनक साफ़ करते हुए कहा 'किधर की सैर होगी ?"

अवतारसिंह ने अपने पतले होठों पर जीभ फेरते हुए कहा "इन जली हुई पहाड़ियों में रखा ही क्या है।"

चाचू ने चमक कर कहा "मैं बताऊँ। चलो श्रीनगर तक हो आयें। पैदल चलेंगे। खूब आनन्द आयेगा।"

एक क्षण, बस केवल एक क्षण के लिये हमने एक दूसरे की ओर देखा। फिर हम सब खुशी से ताली बजा कर बोल उठे :—

"वाह-वाह, कितनी अच्छी बात कही है !"

कुर्बानअली ने गुरुबक्श की पीठ ठोंकते हुए कहा "अब क्या इरादा है तुम्हारा ?"

गुरुबक्श ने दबी सी आवाज़ में कहा "मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

इस पर फिर एक बार ज़ोर से क़हक़हा उठा। मित्रों को अपनी सफलता पर प्रसन्नता थी।

मीरपुर से चलकर तीसरे दिन कोटली पहुंचे। यहां मीरपुर के जले हुए काले टीले हरे-भरे पहाड़ों में बदल जाते हैं। हवा में नई जान डालने वाली ठण्डक अनुभव होती है और फीके, नीरस कुंए के पानी की जगह चश्मों का मीठा पानी मिलता है। यहां पहुंच कर यात्रा के पिछले सब कष्ट काफूर हो गये।

एक दिन आराम करने के बाद कोटली से चलकर सटहरा गये। यह स्थान कोटली से पन्द्रह-बीस मील की दूरी पर है। सटहरा से पुंछ रियासत की सीमा शुरू होती है। सरहद पर चुंगीघर बना हुआ

है। यहां दोनों रियासतों के चुंगीघर हैं, दोनों को चुंगी देनी पड़ती है। हमने दोनों जगह महसूल देने से इन्कार कर दिया।

काश्मीरी चुंगी के अफसर ने बड़ी नम्रता से कहा "आपके पास कुछ चीजें ऐसी अवश्य हैं जिन पर महसूल लगता है।"

कुर्बानअली ने डपटकर पूछा "यह कैसे हो सकता है?"

पुंछ के नौजवान अमलदार के पूछने का ढंग दूसरा था। उसने मुंह बनाते हुए निराले ढङ्ग से कहा "तो साहबान! आपके पास महसूल वाली कौन-कौन सी चीजें हैं?"

कुर्बानअली ने भी उसी तरह मुंह बनाते हुए अलबेले ढङ्ग से जवाब दिया "अ-हा, कुर्बान जाऊँ। हमें तो आपके सर की क़सम जो हमारे पास कोई भी ऐसी चीज़ हो। आपके सर की क़सम, आपके सुन्दर चेहरे की क़सम, आपके..........."

अमलदार ने डपटकर कहा "चुप रहो जी।"

इस झपट का नतीजा यह हुआ कि हमारा सामान खोल-खोल कर अच्छी तरह देखा गया। बिस्तर, छोलदारी, बरतनों की बोरी आदि सब चीजें खोली गईं। आखिर अमलदार को एक बिस्तर में लिपटा हुआ ग्रामोफोन मिल गया और एक वायलिन मिली।

वायलिन को छूकर आपने पूछा: "यह सारंगी है क्या?"

कुर्बानअली ने बड़ी गंभीरता से उत्तर दिया 'नहीं, दिलरुबा है।"

अमलदार ने क्रोध से लाल-पीले होते हुए कहा "यह आप क्या कह रहे हैं? अगर आप गालियां देने पर उतर आये हैं तो मुझे भी लाचार होकर आपको पुलिस के हवाले करना पड़ेगा।"

कुर्बानअली ने वायलिन को हाथ लगा कर तेज़ी से कहा "मैं कहता हूँ, यह दिलरुबा है, आप दिलरुबा नहीं। अपनी सुन्दरता का आपको बड़ा मान है। मैं इस साज को जो दिलरुबा है, वायलिन नहीं कह रहा हूं। समझे आप? अब आप चाहें तो पुलिस को बुला लीजिये, और मैं किसी पागलखाने के डाक्टर को बुलाता हूँ।" यह

कह कर कुर्बानअली इधर-उधर देखने लगा, मानों किसी पागलख़ाने के डाक्टर को तलाश कर रहा हो। हम सब खिल-खिलाकर हंस पड़े।

अमलदार साहब झेंपे तो सही लेकिन बातचीत की दिशा बदल कर ग्रामोफोन की ओर संकेत करते हुए बोले "और यह क्या है ?"

जगदीश ने ग्रामोफोन आगे बढ़ाकर कहा "जनाब ! यह टाइप-राइटर नहीं है। पोर्टेबल ग्रामोफोन है। कोलम्बिया कम्पनी का बनाया हुआ है। इसके अन्दर एक दर्जन रिकार्ड भी बन्द हैं। अगर आपकी ओर से अभयदान मिले तो इसी समय एक-दो रिकार्ड बजाकर आप का दिल बहला दें। कई रिकार्ड तो बहुत ही दिलकश हैं। ख़ासतौर पर मिस दुलारी का वह गीत :—

'रात दिन चुंगी में बैठा रहता है
अपने पहलू में दबाये दर्दे दिल"

अमलदार भी आख़िर मनुष्य थे; हंस पड़े। एक बार जो हंसे तो खूब खुलकर हंसे। हमारे और उनके अट्टहास ने पुंछ चुंगीघर के कोने-कोने को खुशी से खिला दिया। अब चुंगी का हर आदमी प्रसन्न और हंसता हुआ दिखाई देता था। काश्मीरी इन्सपेक्टर साहब भी अपना काम छोड़कर हमारी हास्य-मण्डली में सम्मिलित हो गये थे और इस तरह क्रोध का सारा मैल हंसी के झरने में धुल गया।

शाम को इन्सपेक्टर साहब ने हमें चाय पिलाई। ऐसी चाय काश्मीरी लोग ही बनाना जानते हैं। रात भी उनके साथ मजे में गुजरी। बहुत रात बीते तक दिलरुबा बजता रहा और जगदीश ने 'दर्दे दिल' का रिकार्ड छः-सात बार बजाया। खूब आनन्द आया।

दूसरे दिन सटहरा से चलकर शाम को पुंछ शहर में पहुँच गये। अभी हम शहर से चार-पांच मील की दूरी पर थे कि हमें पुंछ रियासत का सुन्दर दृश्य दिखाई देने लगा। सामने ऊँचे पहाड़ों से घिरी हुई हरी-भरी घाटी थी। इसके बीचों-बीच पुंछ नदी का नीला पानी पत्थरों पर शोर मचाता हुआ बह रहा था। दूर तक पानी से लबालब

भरे हुए धान के खेत दिखाई दे रहे थे। मुरग़ाबियों के सुन्दर पर हवा की लहरों पर फैले हुए थे और डूबते हुए सूरज की लाल किरणों में पुंछ का ऐतिहासिक क़िला जो एक ऊँचे टीले पर शेष सब मकानों से ऊपर उठा हुआ था, घड़े घड़ाये हीरे की तरह चमक रहा था।

मैंने धीमे से कहा "कितना सुन्दर दृश्य है!"

अवतारसिंह के पतले होंठ ऐसे कांपे जिस तरह फूल की पंखड़ियां हवा में कांपती हैं। मगर, वह कुछ न बोल सका। हम गुमसुम वहां बहुत देर तक खड़े रहे। प्रकृति के अमर चित्रकार ने अपनी कला के अक्षयकोष से निकाल कर एक सुन्दर चित्र हमारे सामने रख दिया था। उसने हमें मुग्ध कर लिया। हम खोये से खड़े रहे और उसे चुपचाप देखते रहे।

बहुत देर इसी तरह चुपचाप खड़े रहने के बाद हम वहां से चल पड़े। धीमे-धीमे पैर उठाते हुए, दृश्यों को देखते हुए और अपने दिलों में मनुष्य की बेबसी का अनुभव करते हुए हम चल रहे थे। सड़क अब ढलवान होती जा रही थी। धीरे-धीरे हम एक 'नाले' के पास पहुँचे। इस पर नीले पत्थरों का एक छोटा सा पुल बना हुआ था। पुल के पार चिनार के वृक्ष खड़े थे। अब शहर बहुत पास आ गया था। यह छोटा सा शहर था। शाम का रक्ताभ प्रकाश रात के बढ़ते हुए अंधेरे में गुम हो गया था। शहर की खुली हुई खिड़कियों और वृक्षों की फैली हुई टहनियों में बिजली की बत्तियां आकाश के टिमटिमाते हुए तारों की तरह चमक रहे थे।

धीरे-धीरे हम नदी पर आ पहुँचे। दो कमज़ोर बुर्जों के बीच लोहे की छड़ों के सहारे एक लकड़ी का पुल लटक रहा था जो हमारे पैर रखते ही डोलने लगा। जब हम पुल के बीच पहुंचे तो यह हालत थी कि पुल किसी दुबली स्त्री की तरह डांवाडोल हो रहा था। और हम टल्लन शराबियों की तरह लड़खड़ा रहे थे। हिचकोलों पर हिचकोले आ रहे थे और शायद नीचे बहती हुई नदी की लहरें टकर-टकर कर

प्यार की लोरियां सुना रही थीं। गुरुबक्श को जो तरंग आई तो पुल के बीच खड़ा होकर सहगल का गाया हुआ यह गीत गाने लगा :

झूलना झुलाव री, झूलना झुलावो
अमवा की डाली पर कोयल बोले
कूक, कूक जिया आवे झूलना झुलाव री

रात का समय, नदी की चंचल लहरें, पुल का झूलना, यह याद हमारी स्मृति में सदा अमर बनी रहेगी।

पुंछ शहर की आबादी लगभग दस हज़ार होगी। पुंछ रियासत का यही बड़ा शहर है। इसका असली नाम 'परन्तस' था। राजा परन्तस के नाम पर रखा गया था। बाद में बिगड़कर 'पुंछ' रह गया। अब यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी पुंछ की घाटी बहुत महत्त्व रखती है। चीनी यात्री ह्यूनसांग ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में इसका वर्णन किया है। उसने सोहरन घाटी के मजबूत क़िलों की बहुत प्रशंसा की है। यह घाटी शहर से दस मील की दूरी पर है। लेकिन अब इन क़िलों का नाम भी शेष नहीं। केवल कहीं कहीं कुछ खन्डहर बचे हैं जो बीते हुए महान् समय की स्मृतियां हैं। मुग़लों के समय मुग़ल बादशाह, खासकर बादशाह शाहजहां इसी रास्ते से काश्मीर जाया करते थे। सिख राज्य के समय भी यह घाटी बहुत मशहूर थी। सिखों के कई यशस्वी वीर भाई मेलासिंह रोचासिंह और सब से बहादुर बन्दा बैरागी इसी मिट्टी से पैदा हुए थे।

पुंछ का क़िला दर्शनीय स्थान है। यह मुग़लों और राजपूतों की कला का नमूना है। शहर के उत्तर-पश्चिम में नदी के पास एक ऊँची जगह पर बना हुआ है। क़िले का यह दृश्य बहुत भव्य है।

किले के पास एक झरनों का बाग़ है जो काश्मीर के निशात बाग़ की याद दिलाता है। इस बाग़ के प्रवेश द्वार पर एक ऊँची भव्य इमारत है जिस पर जगह-जगह हिन्दू देवी-देवताओं की रंगीन मूर्त्तियां बनी हैं। द्वार के अन्दर जाते ही बाग़ की विस्तीर्ण भूमि नज़र आती हैं

जिस पर बजरी बिछी हुई है, जिस पर देवदार के वृक्ष खड़े हैं। यह वृक्षों की पंक्ति बाग़ को दो भागों में बांटती हुई बाग़ के जनानापार्क की ओर जाती है। बीच में टेनिस का कोर्ट और क्लब के खेल के मैदान हैं। बाग बहुत फैला हुआ है। शाम को लोग प्रायः सैर के लिए यहाँ आते हैं। और आड़ू, नाश्पाती के वृक्षों के नीचे घास के मखमली बिस्तरों पर, गुलाब की झुकी हुई टहनियों और पानी उछालते हुए झरनों के पास बैठकर प्रकृति के रम्य दृश्यों को देखते हैं। रानी साहिबा का मोती महल भी पुंछ के दर्शनीय स्थानों में से है। यह पश्चिमी भवन-निर्माण कला का सुन्दर नमूना है।

पुंछ में हम तीन दिन रहे। तीसरे दिन बाबू ने सुझाव रखा कि सब "बहरामगिल" चलें। "यह स्थान खूब ठंडा है। नौ हज़ार फुट ऊँचा है।"

यह कहकर वह सब की ओर देखने लगा। मानो कह रहा था कि मेरे सिवा ऐसा सुन्दर प्रस्ताव कौन रख सकता था ?

सबने मिलकर यह प्रस्ताव पास कर दिया और हम दूसरे दिन बहराम गिल के लिए चल पड़े।

उस दिन मटमैले से बादल आकाश पर छाये हुए थे। हमने दो मज़बूत कुली अपने साथ ले लिये थे जिससे रास्ते के तूफ़ानी नालों को पार करने में सहायता मिल सके। अभी हम लगभग दो मील ही गये होंगे कि बूंदाबांदी शुरू हो गई। ज़ोर की आँधी चलने लगी। अँधेरा-सा छा गया। और फिर थोड़ी ही देर में काली-काली घटाओं ने मूसलाधार बरसना शुरू कर दिया।

तीन दिन तक हम चलते गये। ऊँचे-नीचे रास्ते, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियां, तूफ़ानी नाले, मूसलाधार वर्षा सब का मुकाबला किया। चौथे दिन सूर्य ने बादलों से मुँह निकाला और धुन्ध में लिपटे हुए पहाड़ फिर एक बार सुनहरे प्रकाश से जगमगा उठे। करतारसिंह के नीले होंठों पर लाली दौड़ने लगी। और गुरबख्श सिंह के [illegible]

गले से सुरीली तानें निकलना शुरू हुईं। इसी दिन की सुहावनी शाम को, जबकि सूरज मढ़ी की बर्फ़ीली चोटियों के पीछे छुपने जा रहा था और जङ्गल के वहशी आंखों वाले निडर चरवाहे रेवड़ों को वापिस गाँव की ओर ला रहे थे, हम ने मुग़ल बादशाहों के पुराने विलास-स्थान बहराम गिल में प्रवेश किया।

पहाड़ी भाषा में गिल का अर्थ एक तंग रास्ते से है। बहराम गिल चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से घिरा हुआ है, इसके पूरब-दक्षिण में एक पहाड़ काटकर वह रास्ता बनाया गया है। जिस रास्ते से मुग़ल बादशाह काश्मीर जाया करते थे इस रास्ते को बहराम नाम के इंजीनियर ने तैयार किया था और अब यह इसी के नाम पर बहराम गिल कहलाता है। इस रास्ते के अब केवल निशान ही शेष हैं। एक पगडण्डी-सी रह गई है जिस पर अब कभी-कभी भैंसें चराते हुए ग्वाले या कोई अकेला-दुकेला यात्री दिखाई देता है। जिस पहाड़ को काटकर यह रास्ता बनाया गया था उसके आंचल में एक पहाड़ी नाला बहता है।

बहराम गिल एक तंग घुटी हुई जगह पर बना हुआ है, जो कागान और चंडी मढ़ी के नालों के बीच एक ऊँची तलहटी पर है। इसके दक्षिण-पश्चिम में चंडी मढ़ी की ओर ऊँची पर्वत-मालायें खड़ी हैं। जो हमेशा बर्फ़ से ढकी रहती हैं। इधर ऊँची चट्टानें रास्ता रोके खड़ी हैं इन पर मनुष्य का क़दम रखना मौत को बुलाना है। सांपों की यहां इतनी बहुतायत है कि ईश्वर ही बचाये तो बचें। सैंकड़ों, हजारों साँप हैं। हर चट्टान के नीचे साँप और हर चट्टान के ऊपर सांप। धूप सेंकते हुए, बल खाते हुए, सब ओर साँप ही साँप नज़र आते हैं। यहां इन ऊँची, बर्फ़ानी चट्टानों में तीन जानदार जीव ही पाये जाते हैं। एक तो बन्दूक उठाये घंटों शिकार खेलने वाले शिकारी, दूसरे सांप और तीसरे मारख़ोर, जो साँप को भी खाते हैं। यह एक अजीब चौपाया है। यह सर्द बर्फ़ानी चट्टानों में ही रहता है। बड़ा फुर्तीला जानवर है यह।

इसके सिर की हड्डियां व सींग बहुत मज़बूत होते हैं। और यह प्रायः सिर के बल सौ-सौ फुट तक की छलांग लगाते हुए देखा गया है।

मारखोर का शिकार करना जान पर खेलना है। आज से सैंकड़ों वर्ष पूर्व इसका शिकार करते हुए एक मुगल बादशाह की जान गई थी। उस दिन मारखोरों का शिकार हो रहा था। दोपहर के बाद चट्टानों की बढ़ती हुई छाया में जहांगीर बादशाह, दिल्ली का शहजादा सलीम नहीं, बल्कि बूढ़ा जहांगीर एक मचान पर बैठा हुआ मारखोर का शिकार देख रहा था। सामने एक शिकारी बहुत देर से एक मार-खोर की ताक में था। कभी चट्टानों के ऊपर, कभी दायें, बायें, कभी चट्टानों की ओट में छिपता हुआ, सांपों से डरता हुआ, फूंक २ कर क़दम रखता हुआ बहुत सावधानी से, चालाकी से, फुर्ती से वह अपने शिकार के पास आ रहा था और किस दिलचस्पी से, एकाग्रता से जहांगीर गरदन बढ़ाये हुए, होंठ खोले हुए, इस प्रतीक्षा में था कि कब शिकारी शिकार पर झपटता है कि इतने में शिकारी एक ऊँची चट्टान से उछला, उसके दोनों हाथ स्वयं ऊपर उठ गये, डरी हुई आँखों में मौत का अंधेरा छा गया, मुख से एक चीख निकली और दूसरे क्षण शिकारी चार सौ फुट नीचे एक चट्टान पर गिरा और गिरते ही चिथड़े चिथड़े हो गया।

जहाँगीर के दिल पर अमक्र आघात लगा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसका दिल उछल कर मुंह में आ गया। जहांगीर ने हाथ के इशारे से खेल को बन्द करने की आज्ञा दी। रात को इसी आघात से उसे बुखार हो गया। शाही वैद्य ने बहुत इलाज किये, लेकिन मौत का इलाज उनके पास नहीं था। चार पांच दिन के बुखार के बाद मुगल-वंश का यह जगमगाता हुआ तारा टूटकर सूने आकाश की अंधेरी गुफा में गुम हो गया। बादशाह का यह दल, जिसमें कई नवाब, अमीर-जादे, दासी बांदी, सुन्दर लौंडियां, राजपूत सेनापति थे इस समाचार से कम्पित हो गये। केवल मलका नूरजहां और उसके तीन चार

विश्वस्त नौकरों को बादशाह की मृत्यु का पता था। घोषणा कर दी गई कि बादशाह का स्वास्थ्य बहुत खराब है। इस हालत में मल्का होठों पर मुस्कराहट किन्तु दिल में खून के आंसू रोती हुई लाहौर पहुँची। आगे जो कुछ हुआ सारी दुनिया जानती है।

बहराम गिल के लोग बहुत गरीब और भोले-भाले हैं। केवल गर्मियों में यहां रहते हैं और अपनी ज़मीनों में खेती करते हैं। साल भर में एक फ़सल होती है। सर्दी में ये लोग बाल-बच्चों समेत नीचे गरम देश में उतर आते हैं और मज़दूरी करके अपने पेट पालते हैं। समय का प्रभाव देखिये; सदियां बीतने के बाद भी इन लोगों में नूर-जहां और जहांगीर की याद बनी है। ये लोग अपने बच्चों का प्रायः यही नाम रखते हैं। हर घर में एक जहांगीर और एक नूरजहां जरूर मिल जायेंगे। आज भी गांव के नम्बरदार को "जहांगीर" कहा जाता है और हर सुन्दर लड़की को "नूरजहां"।

चंडीमढ़ से वापिस आते हुए हमारे पथ-दर्शक ने पहला रास्ता छोड़ दिया। दूसरा ही रास्ता पकड़ा। यह एक पगडण्डी-सी थी जो नीचे उतरते हुए चण्डीमढ़ के नाले पर समाप्त होजाती थी। रास्ते में मैंने उससे पूछा कि वह हमें किधर ले जा रहा है।

हमारे पथ-दर्शक ने उत्तर दिया, जो चीज़ मैं आपको दिखाने वाला हूँ वह सचमुच बहुत सुन्दर है और एक सुन्दर औरत के नाम से मशहूर है।

अब हम नाले में चल रहे थे। कभी पानी में से गुजरते हुए कभी पत्थरों को फांदते हुए। इस तरह चलते-चलते, हम एक पुल के पास पहुँचे, जो नाले को पार करने के लिये देवदार के एक वृक्ष को गिरा कर बना लिया गया था। यह पुल एक तंग मोड़ पर था जिसके आगे जाने वाली जगह हमारी आंखों से ओझल थी।

हमारे पथदर्शक ने कहा, यही वह जगह है, ज़रा कान लगा कर सुनिये। एक मद्धम सा स्वर, जैसे दूर हज़ारों आदमियों की भीड़ में

पैदा होता है, सुनाई दिया। हम कौतूहलवश जल्दी से आगे बढ़े और तेज़-तेज़ क़दमों से मोड़ काटकर पुल पार किया। जो देखा वह आश्चर्य-जनक था।

एक सुन्दर झरना, चार सौ फुट ऊँचा, पहाड़ की चट्टानों से दो चट्टानों को चीर कर निकलता था और फिर दो सौ फुट नीचे उतर कर एक उठी हुई चट्टान के पीछे गुम हो जाता था। और फिर उसी चट्टान के क़दमों से लाखों भंवर बनाता हुआ निकलता और पत्थरों पर सिर पटकता हुआ, शोर मचाता हुआ एक नाले के रूप में बदल जाता था। झरने के दोनों ओर झाड़ियों से ढकी हुई चट्टानों में कहीं-कहीं ऊँचे गगनचुम्बी वृक्ष खड़े थे और पानी के छोटे-छोटे लाखों मोतियों से सिंच रहे थे।

मैंने धीमे से पूछा : "इसका क्या नाम है।"

"नूरी छनम......" पथप्रदर्शक ने उत्तर दिया।

"नूरी छनम .....नूरजहाँ!"

यहाँ हवा में प्राणदा ठण्डक थी और एक विचित्र सी सुगन्ध थी, जो शायद ओज़ोन की गन्ध से मिलती-जुलती थी। हम झरने से डेढ़-दो सौ गज़ की दूरी पर खड़े थे, फिर भी झरने की हल्की-हल्की फुहार हम पर पड़ रही थी। पानी की छोटी छोटी बूंदें, लाखों, करोड़ों अनगिनत ओस के सुन्दर कणों की तरह वृक्षों के पत्तों पर, झाड़ियों की झुकी हुई शाखों पर, वनलता के शरमाये हुए फूलों पर पड़ रही थीं। झरने के पास ही, जहाँ यह चट्टान में प्रवेश कर रहा था, कुहरे का बादल सा उठ रहा था और उसके बीच में रंगीन इन्द्रधनुष बना था। सातों रंगों की ये धनुषाकार लकीरें हर क्षण बनती थीं और हर क्षण मिटती थीं। पहाड़ की चोटी पर से लाखों टन पानी गिर रहा था। इसका वेग कभी बहुत मन्द और कभी तूफ़ान की तरह तेज़ मालूम होता था। एक क्षण में यह बिजली की तड़प के समान नीचे जाता हुआ मालूम होता और दूसरे क्षण ऐसा दिखाई देता कि झरना बिल्कुल प्रशान्त बन

कर रह गया है, मानो झरना नहीं, बरफ़ की एक बड़ी सिल है, ग्लेशियर है।

पथदर्शक किसी भूली हुई घटना को याद सा करता हुआ धीरे-धीरे कहने लगा: "वह जो सामने बढ़ी हुई चट्टान आप देख रहे हैं, जो झरने के बहुत पास है, यह जहांगीर बादशाह के समय बहुत आगे बढ़ी हुई थी। इस पर पत्थर की दो कुर्सियाँ बनी हुई थीं। इन पर बादशाह जहाँगीर और मल्का नूरजहाँ दोपहर के बाद बैठा करते थे। इधर-उधर पहाड़ों पर कनातें लगा दी जाती थीं। झरने के नीचे सुन्दरियों के तैरने के लिये तालाब बनाया गया था जहाँ...... ।"

पता नहीं वह क्या कह रहा था। लेकिन मेरी आँखों से सदियों का परदा हट गया था। मैं अपने सामने इन दो कुर्सियों पर बैठे हुए एक युगल को देख रहा था। एक था जहांगीर बादशाह, शाहजादा सलीम, अनारकली का प्रेमी और दूसरी थी हिन्दुस्तान की मल्का नूरजहां, मिर्जा ग़ीस की बेटी, शेर अफ़गान की बीवी और अब मुग़ल बादशाह की प्रेमिका। कनातों के अन्दर बिना आज्ञा आने वालों के लिये मृत्यु-दण्ड था। लेकिन मैं तो बादशाह के पास खड़ा सब कुछ देख रहा था। वह एक प्याला शराब हाथ में लेकर मल्का के पास झुक कर क्या कह रहा था? और मल्का उसका क्या उत्तर दे रही थी? क्या इसी झरने की फुवार प्याले के ऊपर नाच रही थी? क्या मल्का की लहराती अलकावली उसी फुवार के मोतियों से गुंधी हुई थी?

पता नहीं, मैं कितनी देर वहां बैठा रहा। और पता नहां मैं कितनी देर वहां और बैठा रहता अगर एक मद्धम सी आवाज़ मुझे उस स्वप्न से जगा न देती। जब मैं होश में आया तो चांदनी छिटकी हुई थी और झरने का पानी चांदी की सिल बनकर गिर रहा था। मेरे सामने एक बूढ़ी औरत खड़ी थी। दुहरी कमर, चेहरे पर अनगिनत झुर्रियां, रुई की तरह सफ़ेद बाल—यही उसका रूप था। पतली सी आवाज़ में वह कह रही थी: "बाबा एक पैसा, खुदा के वास्ते एक पैसा।"

"बाबा ! एक पैसा, खुदा के वास्ते।"

मैंने जल्दी से जेब से निकाल कर एक पैसा उसे दिया। वह मुझे दुआयें देने लगी। मैंने झरने की ओर देखते हुए उससे पूछा "तुम इसे जानती हो—क्या नाम है इसका ?"

उसने रुक-रुक कर कहा: "नूरी......छनम......नू...री छनम।"

मुझे कुछ याद आ गया। मैंने कहा :

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"नूरजहां"

यह कह कर उसने धीरे से सिर झुका लिया और लकड़ी टेकती हुई आगे चल पड़ी। चांदनी में इसके बिखरे बाल चांदी के तारों की तरह चमक रहे थे।